अच्युतरावमोडककृता

अद्वैतामृतमञ्जरी

(उद्धतशृङ्गार-ऋजुसीतिपरकं मुक्तककाव्यम्)
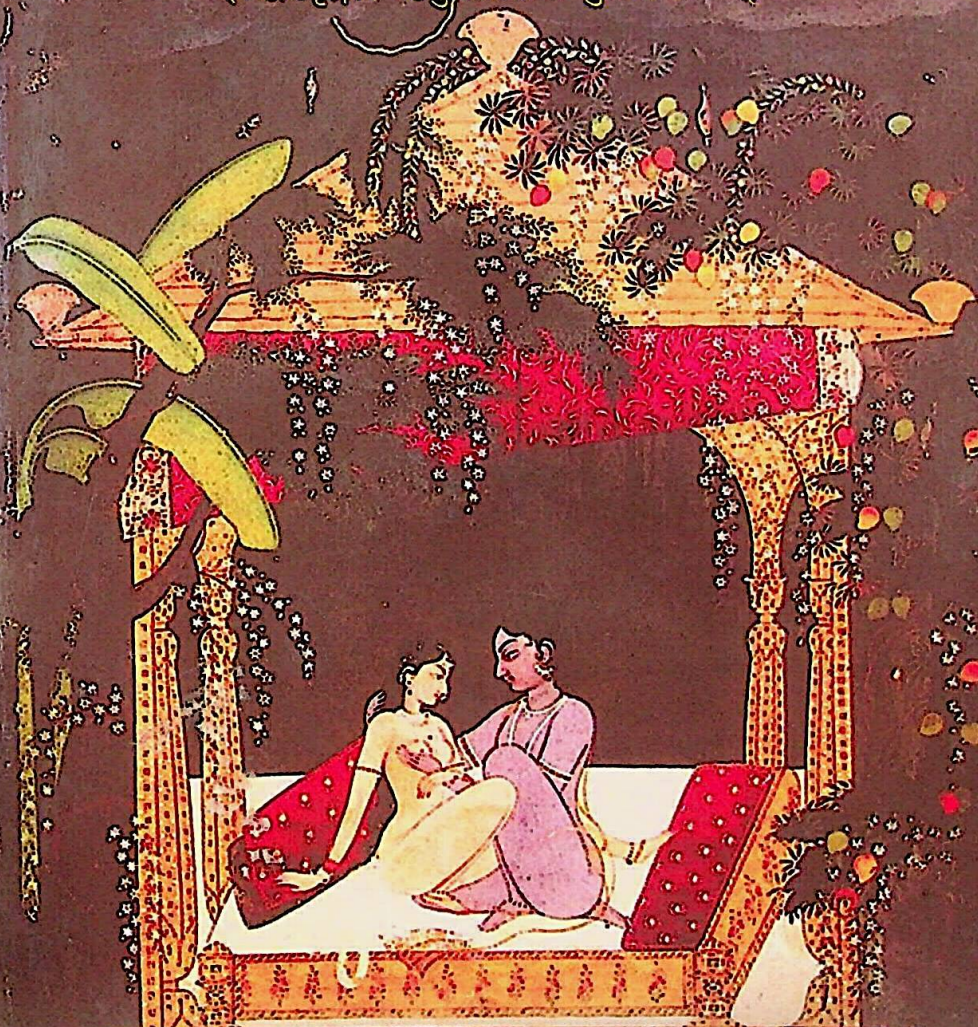
विकसितपद्मे हंसौ प्रफुल्लकुमुदेऽथवा चकोरौ किम्।
तल्पे श्रीहरिकल्यौ जयतः शुभदम्पती कौचित्।।

कला हो या भाव; काव्य के दोनों ही पक्षों से सराबोर शतकों और मुक्तकों की संस्कृत में भरमार है और इनकी संख्या गिनना आकाश में तारे गिनने से कम नहीं। हाँ यह ज़ुरूर है कि इन तारों की छटा और चमक-दमक एक-दूसरे से बिलकुल अलग और निराली है। संस्कृत की इसी भव्य काव्याकाश-गंगा में टिमटिमाता एक सितारा प्रकाश्य मुक्तक भी है।

अद्वैतामृतमञ्जरी तीन शतकों में संग्रहीत मुक्तक काव्य है। शतकों को यहाँ 'मुकुल' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। *साहित्यसार* [illegible] काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में अच्युतराव मोडक इस मुक्तक से दर्जनों उदाहरण काव्यशास्त्रीय घटकों को समझाने-बुझाने हेतु प्रस्तुत करते हैं। काव्य [illegible] सरसता और संस्थान में इसकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित होने के कारण; हम इसके प्रकाशन की ओर उन्मुख हुए। बाद में बड़ौदा से भी इसकी प्रतियाँ प्राप्त हो गईं, जिससे इसका सम्पादन और सहज हो गया।

रति, नीति एवं रतिनीति के रूप में शतकों के नामकरण से ग्रन्थ के प्रतिपाद्य का अनुमान कुछ-कुछ हो जाता है किन्तु इनके आन्तरिक अध्ययन से प्रकट है कि समूचे काव्य का प्रतिपाद्य केवल एक है। इसे हम मोटे तौर पर नीति के रूप में ले सकते हैं। सूक्ष्म रूप में यह नीति भारतीय दर्शन; विशेषकर [illegible] के गूढ़सिद्धान्तों में अभिव्यक्त वह उपदेश या सम्प्रत्यय है जो व्यक्ति को [illegible] की परिधि से बाहर ले आने के प्राथमिक सोपान रचते हैं।

नीति के इन सरल सम्प्रत्ययों को प्रस्तुत करने का ढँग यहाँ; इस मुक्तक में बड़ा निराला है। वेदान्तसम्मत नीति-वधूटी को मोडक ने शृङ्गार के उस सतरंगी परिधान में प्रस्तुत किया है जिसके झीने रेशमी वस्त्रों से झलकता, झिलमिलाता नीति-नववधू का अङ्ग-प्रत्यङ्ग किसी भी सहृदय को आपे से बाहर कर सकता है।

अच्युतराव मोडक 18वीं शती के उत्तरार्द्ध और 19वीं शती [illegible] पूर्वार्द्ध में वर्तमान संस्कृत-विद्या के अपूर्व आचार्य थे। वेदान्त के अध्येता; आगम, तन्त्र और योग-विद्याओं के जानकार, लेखक। स्थापित साहित्यशास्त्री। रससिद्ध कवि। खण्ड, मुक्तक, गीति, शतक, स्तोत्र, लहरी आदि विधाओं में कई रसपूर्ण काव्यों के रचयिता। दो चम्पू-प्रबन्धों के निर्माता। एक नाटक और एक भाण के प्रणेता। इन सबसे इतर वह अद्भुत टीकाकार की हैसियत से हमेशा याद किए जाएँगे। *पञ्चदशी* जैसे दुरूह शास्त्रीय ग्रन्थों से लेकर *अमरुशतक* और *गोवर्धनसप्तशती* जैसे सरस काव्य तक की टीका की।

आचार्य मोडक 1839 ई. में दिवंगत हुए और 1869 ई. में पहली बार इनकी रचनाएँ प्रकाशित होना शुरू हुईं। 1869 में *नीतिशतपत्र*, 1873 में *कृष्णलीलामृत* और इसी के आस-पास *भागीरथीचम्पू* भी प्रकाशित हुआ, किन्तु संस्कृत-साहित्येतिहास और सन्दर्भ-ग्रन्थों में इन काव्यों और कवि की विशेष चर्चा ढूँढने से भी नहीं मिलने की। 1906 में *साहित्यसार* के प्रकाशन के बाद मोडक काव्यशास्त्र के इतिहास में स्थापित हुए और यहाँ से इस इतिहास में इनकी चर्चा चल निकली। किन्तु साहित्य के इतिहास में मोडक का कवित्व और उनकी कविता आज भी सामयिक समीक्षा की ओर मुँह किए बैठे हैं। आशा है 'दुर्लभ कृति-प्रकाशन माला' का यह तृतीय पुष्प इस ओर कुछ सहायता कर सकेगा।

प्रकाशक

अज्ञात एवं दुर्लभ कृति प्रकाशन माला, संख्या-३

अच्युतरावमोडकविरचिता

अद्वैतामृतमञ्जरी

(उद्धतशृङ्गार-ऋजुनीतिपरकं शतकत्रयात्मकं मुक्तककाव्यम्)

(नीतिशतपत्राख्य-तद्रचितान्यशतकपरिशिष्टात्मिका)

सम्पादन

विमलेन्दु कुमार त्रिपाठी

राइचरण कामल

हिन्दी रूपान्तरण

प्रताप कुमार मिश्र

प्रकाशक

अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान

वाराणसी

ISBN: 978-81-906145-8-0

प्रथम संस्करण - 2020

प्रकाशक

अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान
आराजी नं. 469, सत्यम् नगर कॉलोनी, भगवानपुर, बी. एच. यू.
वाराणसी, उ. प्र., पिन - 221005
Website: www.pratnakirti.com
Email: pratnakirti@gmail.com

मूल्य - 300/-

80 जी.एस.एम. नेचुरल् मैपलीथो काग़ज़ पर 500 प्रतियाँ प्रकाशित

मुद्रक : महावीर प्रेस, वाराणसी.

अद्वैतामृतमञ्जरी

विषयसूची

भूमिका

सङ्केताक्षर

अ.मञ्जरी	अद्वैतामृतमञ्जरी / अद्वैतमञ्जरी
बड़ौदा	Oriental Institute, Vadodara से प्राप्त *रतिमुकुल, नीतिमुकुल* एवं *रतिनीतिमुकुल* की पाण्डुलिपि
मोकुवृ.	मोडककुलवृत्तान्त
मोडक	अच्युतराव मोडक
र.काल	रचना काल
वाराणसी	अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी से प्राप्त *रतिमुकुल, रतिनीतिमुकुल* एवं *नीतिशतपत्र* की पाण्डुलिपि
साहित्यसार	साहित्यसारम्, निर्णयसागर, मुम्बई से प्रकाशित
सां.सार	साहित्यसारम्, सम्पूर्णान्द सं. वि. वि., वाराणसी से प्रकाशित.
BORI	Bhandarakar Oriental Research Institute, Pune.
NCC	New Catalogous Catalogorum, Vol-1
O.I. Baroda	Oriental Institute, Vadodara

भूमिका

संस्कृत-साहित्य के असंख्य काव्य आज भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में, वैयक्तिक हाथों, घरों, मठ-मन्दिर तथा गुदड़ी-बाजारों में विनष्ट हो रहे हैं। वैयक्तिक चेतना के स्तर पर आज भी इनके संरक्षण का कोई साक्षात् उपाय नहीं दीख पड़ता। राष्ट्रीय स्तर पर इस बीच 'राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन' तथा 'इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र' द्वारा पाण्डुलिपियों के संरक्षण पर किये जा रहे प्रशंसनीय कार्यों से इस ओर कुछ आशा सी ज़ुरूर जगी है; किन्तु यह प्रयत्न इस राष्ट्रीय धरोहर को संरक्षित करने के सन्दर्भ में अब भी नगण्य सा ही है।

वैयक्तिक घरों और हाथों में विनष्ट होती कुछ ऐसी ही अज्ञात, अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित संस्कृत-कृतियों में अच्युतराव मोडक-कृत *अद्वैतामृतमञ्जरी (अ.मञ्जरी)* नामा मुक्तक काव्य भी है जिसमें शृङ्गार एवं नीति-अनुस्यूत सुभाषितों द्वारा अद्वैत-वेदान्त के महनीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। *अद्वैतामृतमञ्जरी* को ही यदा-कदा *अद्वैतमञ्जरी* भी कह कर पुकारा जाता है।

अ.मञ्जरी नामा इस मुक्तक काव्य की सत्ता अच्युतराव मोडक ने स्वयं अपने विश्रुत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ *साहित्यसार* में सूचित की है। काव्य के घटकों को परिभाषित और व्याख्यायित करने के सन्दर्भ में मोडक ने कई बार स्वयं रचित काव्य-ग्रन्थों से विविध उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इसी प्रक्रम में वह *अ.मञ्जरी* से भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसमें भी *अ.मञ्जरी* से किसी पद्य को प्रस्तुत करते समय वह यह भी सूचित करते हैं कि फलाँ पद्य *अ.मञ्जरी* के किस मुकुल में है। इस रूपमें वह *अ.मञ्जरी* के तीन मुकुलों की सूचना देते हैं - *रतिमुकुल, नीतिमुकुल एवं रतिनीतिमुकुल*।

उदाहरण के लिए हम *अ.मञ्जरी* के उपर्युक्त तीनों ही मुकुलों के उन पद्यों को यहाँ प्रस्तुत करते हैं जिन्हें मोडक ने *साहित्यसार* में नाम्ना उद्धृत किया है और यह पद्य हमारी प्रकाश्य हस्तलिखित प्रतियों में भी कुछेक पाठान्तर के साथ यथावत् प्राप्य हैं (पद्यों के आगे पड़ी संख्या हमारी हस्तलिखित प्रति में पद्य की संख्या है) —

यथा वा मदीयाद्वैतामृतमञ्जर्यां रतिमुकुले

प्रत्यङ्मुखोऽपि रक्तः पूर्णोऽप्युदयन् कुमुद्वतीः स्पृशति।
द्विजराजोऽपि त्यक्त्वा किमित्ययं तारकाः स्वीयाः।।*(३)*

(साहित्यसार, पृ.-601)

मदीयाद्वैतामृतमञ्जर्यां नीतिमुकुले

हत्वा तमोऽपि सदंशं प्रकाशमभिनीय सर्वतः स्नेहम्।
दीप कथं कज्जलमपि समुद्गिरस्यतुलसन्तापात्।।*(४६)*

(साहित्यसार, पृ.-696)

यथा अद्वैतामृतमञ्जर्यां रतिनीतिमुकुले

भव्या निजैकसेव्या ददती चातुर्यतश्चतुर्वर्गम्।
स्वस्मिन्नेव रतिमती सतीव मतिरेव जयति नीतिरपि।।*(१)*

(साहित्यसार, पृ.-502)

यथा वा मदीयाद्वैतामृतमञ्जर्यां रतिनीतिमुकुले

कुटिलाकुलोऽपि राग्यपि दर्शनतः क्षोभकोऽपि बद्धोऽपि।
सीमन्तवदृजुश्चेन् मुक्ताभूष्यो न किं भूयात्।।*(३)*

(साहित्यसार, पृ.-517, 614)

मोडक के अपने ही अन्तरङ्ग साक्ष्यों से उपरिवत् प्रकट है कि उन्होंने *अ.मञ्जरी* नामा काव्य की रचना की और इसमें उपर्युक्त तीन मुकुल सम्मिलित हैं।

अस्तु, यह तीनों ही मुकुल और इनके रूप में उपर्युक्त *अ.मञ्जरी* नामा मुक्तक काव्य अभी तक अज्ञात और अप्रकाशित था। संस्कृत-साहित्येतिहास के सौभाग्य से इसके तीनों ही मुकुलों की हस्तलिखित प्रतियाँ हमें उपलब्ध हुईं। प्रारम्भ में वाराणसी से *रतिमुकुल* एवं *रतिनीतिमुकुल* मात्र की उपलब्धि के कारण हम इसके मूल काव्य स्वरूप

अ.मञ्जरी को नहीं समझ पाए थे; किन्तु कालान्तर में जब बड़ौदा से इनका एक पाठ और स्वतन्त्र रूप से *नीतिमुकुल* की पाण्डुलिपि भी उपलब्ध हो गई तो यह प्रकट हो गया कि यह तीनों ही मुकुल *अ.मञ्जरी* का व्यवस्थित रूप है जिसकी चर्चा मोडक अपने *साहित्यसार* में बहुधा करते हैं।

अधुना *अ.मञ्जरी* का सानुवाद सम्पादित पाठ प्राच्य-विद्या एवं विषयों के अनुरागी तथा संस्कृत-साहित्य के काव्य-रसिक विद्वानों एवं शोध-प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

पाण्डुलिपि प्राप्ति स्थल एवं विवरण

अ.मञ्जरी में समाहित उपर्युक्त तीन मुकुलों की पाण्डुलिपियों का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् प्रस्तुत है —

१. *रतिमुकुल*

इसकी हस्तलिखित प्रति हमें वाराणसी और बड़ौदा से प्राप्त हुई। 'अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी से प्राप्त हस्तलिखित प्रति का सामासिक विवरण इस प्रकार है —

ग्रन्थनाम - आर्याशतकम् (रतिमुकुलः), ग्रन्थकार - अच्युत, आधार - देशी कागज, लिपि - देवनागरी, साइज - २५ × ८.८ (से.मी.), कुल पृष्ठ (पत्र) - ८, प्रतिपृष्ठ पंक्ति : ७–८, प्रतिपंक्ति अक्षर : ३८–४२, लिपिकार - अज्ञात, लिपिकाल - अज्ञात, अवस्था - प्राचीन, स्थिति - पूर्ण, विषय - साहित्य, रक्षित संख्या -३२१.

ध्यान रहे कि इस प्रति में ग्रन्थ का नाम *आर्याशतकम्* बताया गया है, जबकि ग्रन्थान्त की पुष्पिका में लिपिकार इसे *नीतिमुकुलः* के रूप में प्रस्तुत करता है। *आर्याशतकम्* के रूप में ग्रन्थ का नामकरण सम्भवतः लिपिकार ने पद्यों में प्रयुक्त छन्द के आधार पर अपनी सुविधा के लिए कर लिया होगा। प्रथम पत्र के ऊपरी हिस्से पर ही इस प्रति के किसी पूर्ववर्ती संग्राहक ने हल्की काली स्याही से इसका नाम *रतिनीतिमुकुल* भी लिखा है जो कि भ्रम की स्थिति उत्पन्न करता है।[1]

वस्तुतः यह *अ.मञ्जरी* के *रतिमुकुल* की प्रति है और उपर्युक्त इसके सभी नाम लिपिकार और संग्राहकों की असावधानी के कारण प्रस्तुत हुए हैं।

---

1. *ग्रन्थ के इन अभिधानों पर विशेष विवरण हेतु देखिए - मिश्र, प्रवीण कुमार, अच्युतराय मोदक कृत आर्याशतकम् की अज्ञात एवं दुर्लभ पाण्डुलिपि, पृ. 20-36.*

प्रस्तुत हस्तलेख हरताल से भिगोए गए कुल ४ पत्रों में समाप्त होता है। चमकदार काली स्याही का प्रयोग ग्रन्थ के लेखन हेतु किया गया है और पद्यों की संख्या हेतु प्रयुक्त अङ्कों व इन अङ्कों की समाप्ति-बोधक खड़ी पाई को लाल वर्ण से रँग दिया गया है जिसके कारण दोनों ही अलग-अलग स्पष्ट प्रतीत होते हैं। अक्षर सुवाच्य हैं और प्रायः पद्यों को पढने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती।

ग्रन्थ का प्रारम्भ निम्नवत् होता है —

श्रीशं वन्दे।

स्फुरणेनेष्टवियोगं कथयिष्यत इति भियेव दक्षान्ये।
त्यक्ते याभ्यां स्वतनू तावाद्यौ दंपती नुमोऽभिन्नौ।।१

और ग्रन्थ की समाप्ति निम्नलिखित पद्य से होती है —

अणुमात्रभेदसत्त्वे वियोगभयतः सदैव संमिलतोः।
पात्वनुरागः प्रांचोरानंदश्चाभिनवयुवयोः।।१०१

हस्तलेख की अन्तिम पुष्पिका में जो स्मरणीय सूचना है, वह निम्नवत् पढी जा सकती है —

इत्यच्युतविरचिताद्वैतमञ्जर्यां रतिमुकुलोऽयमलंकृतः। शिवम्। श्रीगुरुचरणार्पणमस्तु।

ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा से प्राप्त *रतिमुकुल* की हस्तलिखित प्रति का सामासिक विवरण इस प्रकार है —

ग्रन्थनाम - अद्वैतमञ्जरी (रतिमुकुलः), ग्रन्थकार - अच्युत कवि, आधार -देशी कागज, लिपि - देवनागरी, साइज - २७.३ × १०.१ (से.मी.), कुल पत्र - ५, प्रतिपृष्ठ पंक्ति : ११, प्रतिपंक्ति अक्षर : ४६–४८, लिपिकार - अज्ञात, लिपिकाल - अज्ञात, अवस्था - प्राचीन, स्थिति - पूर्ण, विषय - काव्य, रक्षित संख्या -४२६७.

इस प्रति का प्रारम्भ निम्नवत् होता है —

श्रीशं वन्दे।

स्फुरणेनेष्टवियोगं कथयिष्यत इति भियपसव्यान्ये।
त्यक्ते याभ्यां स्वतनू तावाद्यौ दंपती नुमोऽभिन्नौ।।१

और ग्रन्थ की समाप्ति निम्नलिखित पद्य से होती है —

अणुमात्रभेदसत्वे वियोगभयतः सदैव संमिलितोः।
पात्वनुरागः प्रांचोरानंदश्चाभिनवयुवयोः।। १०१

ग्रन्थान्त की पुष्पिका निम्नवत् पढी जा सकती है —

इत्यच्युतविरचिताद्वैतमञ्जर्यां रतिमुकुलोऽयमलंकृतः शिवम्। श्रीगुरुचरणार्पणोस्तुः। श्रीरस्तुः। संपूर्णः। समाप्तः।

पाठ की दृष्टि से *रतिमुकुल* की दोनों ही हस्तलिखित प्रतियाँ प्रायः सुपाठ्य हैं। वर्तनीगत अशुद्धियों में मात्राओं का व्यतिक्रम, द्वितीयान्त 'अम्' और इसके स्थान पर अनुस्वार एवं अवग्रह का अभाव, व्यञ्जनों का व्यतिक्रम आदि उल्लेखनीय हैं। वाराणसी की अपेक्षा बड़ौदा वाली प्रति में अशुद्धियाँ अधिक हैं।

रतिमुकुल आर्या-छन्द में निबद्ध 100 पद्यों में पूर्ण होता है। *रतिमुकुल* की उपर्युक्त दोनों ही प्रतियों के लिपिकार ने अन्तिम पद्य की संख्या 101 के रूप में टङ्कित की है, किन्तु पद्यों की कुल संख्या 100 ही है। यह व्यतिक्रम पद्य संख्या 66 की अनुपलब्धि के कारण है। 65 वें पद्य के बाद प्रस्तुत पद्य की संख्या 67 है।

२. *नीतिमुकुल*

नीतिमुकुल की हस्तलिखित प्रति बड़ौदा स्थित ओरियण्टल इंस्टीट्यूट के हस्तलेख संग्रहालय में सुरक्षित है। इसका सामासिक विवरण निम्नवत् है —

ग्रन्थनाम - अद्वैतमञ्जरी (नीतिमुकुल), ग्रन्थकार - अच्युत, आधार-देशी कागज, लिपि - देवनागरी, साइज २७.२ × १० (से.मी.), कुल पत्र - ५, प्रतिपृष्ठ पंक्ति : १०–११, प्रतिपंक्ति अक्षर : ४८-५०, लिपिकार - अज्ञात, लिपिकाल- अज्ञात, अवस्था - प्राचीन, स्थिति - पूर्ण, विषय - काव्य, रक्षित संख्या - ४२६९.

नीतिमुकुल का प्रारम्भ निम्नवत् होता है —

श्रीशं वन्दे।

जडभोगियोषितां यः संगवशात्तत्तर्धतां यातः।
तन्नौमि तेन तत्राऽनाप्त्यै तृप्त्यै च नित्यनीत्यैव।।१

जबकि ग्रन्थ का अन्त निम्नलिखित पद्य से होता है —

इत्यच्युतेन रचितः श्रीहरितृप्त्यै तदेककृपयैव।
स्वमुदेऽप्यद्वैतामृतमंजर्यां नीतिमात्रमुकुलोऽयं।।१०९

ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका में निम्नलिखित सूचना पढी जा सकती है —

शिवोहं। संपूर्णः।।

पाठ की दृष्टि से *नीतिमुकुल* की यह हस्तलिखित प्रति प्रायः अशुद्ध है और रति एवं रतिनीतिमुकुलों की प्रति की अपेक्षा इसमें वर्तनी की अशुद्धि अधिक प्राप्त होती है। कुछेक पद्यों में तो एक किसी पद के अपाठ्य होने से पूरे 'चरण' का अर्थ सन्दिग्ध हो उठा है और तमाम कोशिशों के बावजूद इसके शुद्ध पाठ तक हम नहीं पहुँच सके।

वर्तनीगत अशुद्धियों में मात्राओं में व्यतिक्रम, द्वितीयान्त 'अम्' और इसके स्थान पर अनुस्वार एवं अवग्रह का अभाव, व्यञ्जनों का व्यतिक्रम, वर्णव्यत्यय आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

रति की भाँति *नीतिमुकुल* भी आर्या-छन्द में निबद्ध है। हालाँकि लिपिकार ने अन्तिम पद्य की संख्या 109 के रूप में टङ्कित किया है; किन्तु पद्यों की कुल संख्या 108 ही है। यह व्यतिक्रम पद्य संख्या 65 की अनुपलब्धि के कारण है। 64 वें पद्य के बाद प्रस्तुत पद्य की संख्या 66 है।

३. *रतिनीतिमुकुल*

वाराणसी से प्राप्त *रतिनीतिमुकुल* की हस्तलिखित प्रति का सामासिक विवरण इस प्रकार है —

ग्रन्थनाम - शृङ्गारशतकम् (रतिमुकुल), ग्रन्थकार - अच्युत, आधार - देशी कागज, लिपि - देवनागरी, साइज : २५ × ८.८ (से.मी.), कुल पृष्ठ (पत्र) - ८, प्रतिपृष्ठ पंक्ति : ७–८, प्रतिपंक्ति अक्षर : ३८–४२, लिपिकार - अज्ञात, लिपिकाल-अज्ञात, अवस्था - प्राचीन, स्थिति - पूर्ण, विषय - साहित्य, रक्षित संख्या - ३२०.

ग्रन्थ का प्रारम्भ निम्नलिखित वाक्यों एवं पद्य से होता है —

श्रीगणेशाय नमः। श्री कुलदेवताय नमः। श्रीशं वन्दे ।

भव्या निजैकसेव्या ददती चातुर्यतश्चतुर्वर्गं।
स्वस्मिन्नेव रतिमती सतीव मतिरेव जयति नीतिरपि।।१

जबकि ग्रन्थ का अन्त निम्नलिखित पद्य से होता है —

याभिः सह सुविलासादैहिकपारत्रिकोऽपि पुरुषार्थः।
नीतिभ्यश्च सतीभ्यो भूयस्ताभ्यो नमस्कुर्मः।। १०१

ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका में निम्नलिखित सूचना पढी जा सकती है —

इति नीतिमुकुलः।।

स्मरणीय है कि *रतिनीतिमुकुल* की इस प्रति का *शृङ्गारशतकम्* यह अभिधान, इसके लिपिकार द्वारा ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ पर - '**अथाच्युतकृतशृङ्गारशतकप्रारम्भः।**' के रूप में रखा गया है। इसी प्रकार ग्रन्थान्त की पुष्पिका में इसे *नीतिमुकुल* के नाम से सम्बोधित किया गया है।[2] बड़ौदा वाली प्रति की उपलब्धि से पूर्व हम इसे *नीतिमुकुल* के ही रूप में स्वीकार करते रहे किन्तु; उस प्रति के प्राप्त हो जाने से हमें ज्ञात हुआ कि यह *नीतिमुकुल* नहीं; अपितु *रतिनीतिमुकुल* है।

रतिनीतिमुकुल की प्रस्तुत प्रति आर्या-छन्द में निबद्ध 101 पद्यों में पूर्ण होती है। पाठ की दृष्टि से यह प्रति पूर्णतः स्पष्ट और सुपाठ्य है। वर्तनीगत अशुद्धियों में द्वितीयान्त 'अम्' और इसके स्थान पर अनुस्वार एवं अवग्रह का अभाव, व्यञ्जनों का व्यतिक्रम तथा वर्णव्यत्यय पूर्व की भाँति इसमें भी यथावत् प्रस्तुत हैं।

बड़ौदा स्थित ओरियण्टल इंस्टीट्यूट के हस्तलिखित संग्रहालय से प्राप्त प्रति का सामासिक विवरण इस प्रकार है —

ग्रन्थनाम - अद्वैतमञ्जरी (रतिनीतिमुकुल), ग्रन्थकार - अच्युत, आधार - देशी कागज, लिपि - देवनागरी, साइज :२७.२ × १०.१ (से.मी.), कुल पत्र - ५, प्रतिपृष्ठ पंक्ति : १०, प्रतिपंक्ति अक्षर : ४०–४९, लिपिकार - अज्ञात, लिपिकाल-अज्ञात, अवस्था - प्राचीन, स्थिति - पूर्ण, विषय - काव्य, रक्षित संख्या - ४२७०.

ग्रन्थ का प्रारम्भ निम्नलिखित वाक्यों एवं पद्यों से होता है —

श्रीशं वन्दे।

भव्या निजैकसेव्या ददती चातुर्यतश्चतुर्वर्गम्।
स्वस्मिन्नेव रतिमती सतीव मतिरेव जयति नीतिरपि।।१

---

2. *ग्रन्थ के विविध अभिधानों हेतु देखिए - मिश्र, प्रवीण कुमार, अच्युतराय मोडक और उनकी अज्ञात रचना शृंगारशतकम्, पृ. 135-144.*

जबकि ग्रन्थ का अन्त निम्नलिखित पद्य से होता है —

याभिः सह सुविलासादैहिकपारत्रिकोऽपि पुरुषार्थः।
नीतिभ्यश्च सतीभ्यो भूयस्ताभ्यो नमस्कुर्मः।। १०१

ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका में निम्नलिखित सूचना पढी जा सकती है —

इति नीतिमुकुलः। सम्पूर्णः। समाप्तः। श्रीरस्तुः। श्रीशुभ भवतुः।

बड़ौदा से उपलब्ध *रतिनीतिमुकुल* की यह प्रति वाराणसी से उपलब्ध हुई प्रति के समान और लगभग एकरूप है। वाराणसी की अपेक्षा इसमें एक पद्य अधिक उपलब्ध होता है - **'सौरभ्यग्राहकतात्रास्तीति'....**। इसी प्रकार इसमें निम्नलिखित पद्य का अभाव भी है - **'महिलाकपोलमण्डलमौक्तिकतः'.....**। दोनों ही प्रतियों में पद्यों की संख्या लिखते समय लिपिकार के द्वारा एकाधिक बार त्रुटि भी उल्लेखनीय है।

पीछे हम कह आए हैं कि रति एवं रतिनीतिमुकुलों की दोनों ही पाण्डुलिपियाँ दो स्थानों से प्राप्त होने के बावजूद लगभग एक हैं। हम बहुत ग़लत न होंगे यदि यह भी कहें कि इन दोनों ही प्रतियों का निर्माण किसी एक ही प्रति से हुआ है। बड़ौदा वाली प्रति के लिपिकार के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वह 'ऋ'-वर्ण को 'रु' लिखता है — *सीमन्तवद्रुजुश्श्रेन्मुक्ताभूष्यो न किं भूयात्। (रतिनीतिमुकुल, पद्य-3)*। इससे हमारा अनुमान है कि इस प्रति का निर्माण दक्षिण भारत में ही कहीं हुआ होगा।

यहाँ क्रमप्राप्त परिशिष्ट में प्रकाश्य *नीतिशतपत्र* के विषय में यह उल्लेखनीय है कि *अ.मञ्जरी* से भिन्न होने के कारण इसकी हस्तलिखित प्रति एवं इससे सम्बन्धित आवश्यक परिचर्चा परिशिष्ट में ही प्रस्तुत की जाएगी।

पाठ-सम्पादन पद्धति

उपर्युक्त तीनों ही मुकुलों के रूप में *अ.मञ्जरी* का पाठ इनकी मूल हस्तलिखित प्रतियों की सहायता से तैयार किया गया है। *रतिमुकुल* एवं *रतिनीतिमुकुल* की दो प्रतियाँ हमें उपलब्ध हुईं, इनके पाठों को परस्पर मिलाने से ज्ञात हुआ कि इनमें विशेष अन्तर नहीं। *नीतिमुकुल* की एक-मात्र प्रति के कारण उपलब्ध पाठ ही प्रस्तुत किया गया है।

इस सम्पादित पाठ में हमने वर्तनीगत तथा भाषागत अशुद्धियों को व्यवस्थित कर अपना कल्पित शुद्ध पाठ प्रस्तुत किया है। सामान्य मात्रागत अशुद्धियों, द्वितीयान्त 'म्' और इसके स्थान पर अनुस्वार तथा अवग्रह के अभाव को छोड़ अन्य पाठान्तर पादटिप्पणी में देने के बजाए ग्रन्थान्त में **'पाठान्तर'** शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है।

अद्वैतामृतमञ्जरी : विषय एवं ग्रन्थ-प्रकृति

जैसा कि हम कह आए हैं *अ.मञ्जरी* तीन मुकुलों में विभक्त एक मुक्तक काव्य है। इसका प्रत्येक मुकुल एक शतक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक शतक अपने विषय के अनुरूप अपना अभिधान प्रस्तुत करता है। नीचे सभी मुकुलों के वर्ण्य-विषय पर संक्षिप्त परिचर्चा की जा रही है।

रतिमुकुल आर्या-छन्द में रचे 100 पद्यों में पूर्ण होने वाला स्वतन्त्र शतक काव्य है। संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध शृङ्गारपरक शतक-काव्यों के समानान्तर *रतिमुकुल* की भिन्नता, विलक्षणता और नवीनता यह है कि पिछले शतक-काव्यों में जो शतक जिस विषय को लेकर प्रारम्भ हुआ उसी के विवरण में समाप्त हो जाता है, जैसे - यदि नीति को विषय बनाकर कवि ने लिखना प्रारम्भ किया हो तो शतक केवल नीति के विवरण में ही समाप्त हो जाएगा, किन्तु *रतिमुकुल* अपना विषय तो चुनता है अनेकानेक दार्शनिक प्रतीकों, तथ्यों तथा नीति को; किन्तु इनसे सम्बन्धित तथ्यों को वह सम्प्रेषित करता है विशुद्ध शृङ्गार की कोमल भावभूमि पर।

रतिमुकुल; का अङ्गी-रस शृङ्गार है और यह विशुद्ध शृङ्गार-परक रचना है। शृङ्गार के मुख्य आलम्बन नायिका और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों, प्रसाधन एवं उसके सभी अवयवों पर मोडक ने अपनी सिद्ध लेखनी को उन्मुक्त छोड़ दिया है, जिससे वर्णन और भी रोचक हो उठे हैं। शृङ्गार के यह विवरण विविध प्रकार के दार्शनिक तथ्यों के प्रतीकों, नीति-सम्प्रत्ययों तथा अन्यान्य उपदेश्य सन्दर्भों को अपना वर्ण्य बनाते हैं और वस्तु-वृत्तों को स्पष्ट निरूपित करते चलते हैं। नितान्त दुर्बोध और कभी-कभी सुतरां नीरस दार्शनिक-तथ्यात्मक प्रतीक और 'नीति' के प्रसङ्गों को शृङ्गार के आवरण में प्रस्तुत कर मोडक ने अपने पाठकों को इन विषय-विन्दुओं तथा नीतिसम्बद्ध तथ्यों की ओर आकृष्ट करने में अच्छी हुनर दिखाई है और उनका यह प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय बन पड़ा है।

अस्तु, यहाँ हम उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि हेतु इस मुकुल के दो चार पद्यों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर विद्वान् पाठकों का ध्यान इस ओर अवश्य आकृष्ट करेंगे। सर्वप्रथम प्रेमी-युगल की 'शय्या' को लीजिये। विज्ञ पाठकों ने इसके बहुत गुण-गान सुने होंगे और बहुत सी उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि के माध्यम से इसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष आनन्द लिया होगा। किन्तु यहाँ यह आपको; साधकों, ब्रह्मज्ञानियों की तुरीय अवस्था से मेल खाती हुई जान पड़ेगी —

सुमनोमात्रविरचिता स्फीताऽतुलनिर्मलाऽवदाता च।
आत्मरतिं प्रति योग्या तुर्यावस्थेव शय्येयम्।।३१

कान्ता-स्तनों के मर्दन पर संस्कृत-साहित्य ही नहीं, विश्व-साहित्य ने विविध प्रकार की कल्पनाएँ की होंगी, तर्क-ऊह किञ्च विचार किये होंगे। किन्तु ऐसे मृदुल, सुकोमल और चित्तग्राही स्तनों का निर्दयतापूर्ण मर्दन क्यों किया जाता है, इस पर कभी विचार किया है आपने? नहीं;... तो सुनें मोडक के मुख से —

'स्वयं कठिन-कर्मा, कुकर्मों में फँसे रहने के कारण मुँह में कालिख पुते हुए और अन्याय से अर्जित धन-धान्य से व्यर्थ गौरव को प्राप्त जन यदि गुणी, सांसारिक मोह-माया और बन्धनों से मुक्त व्यक्ति को दबाएँगे और सताएँगे तो उनका मर्दन तो सुतरां निश्चित है। मानों मुक्ता-मणियों अथवा मोतियों को जो कि सूत्र में पिरोये गए हैं, ऐसे सुन्दर अलङ्करण को अपने से निम्न स्थान पर रखने के कारण ही ये कठोर, काले मुँह वाले और विस्तार को प्राप्त हुए स्तन भी रति-क्रीडा में निर्दयतापूर्वक मर्दित होते हैं —

कठिनाभ्यामपि याभ्यां कृष्णमुखाभ्यां गुरुत्वमाप्ताभ्याम्।
मुक्ता अपि गुणबद्धाः स्वाधो रचिताः कथं न तौ मर्द्यौ।।४३

'इस सुन्दरी ने अपने बालों में सुगन्धित तेल लगाकर, उन्हें तीन भागों में गूँथ लिया है और उन पर मोतियों की माला सजा ली है। सुनहले बाल, सुगन्धित तेल और मोतियों की माला; तीनों से मिली ये तीन भाग में गुँथी चोटी! देखें आज कौन युवक इनके बन्धन से बच जाता है! —

कृत्वा भागत्रितयं मिलितं गुम्फेन चारु संयमनम्।
कचसुमनोमुक्तानां कस्य नवा निर्जरस्य वशतायै।।४६

नायिका की चोली संसार में सबसे अधिक प्रशंसनीय है। इसलिए नहीं कि वह चोली मात्र है, अपितु इसलिए कि वह अन्वर्थ-नाम कञ्चुकी - 'ढँकने वाला' है। अब देखिए न - बड़े-बड़े, गोल, सुडौल, बड़े ही कठोर, औ' नुकीले और हमेशा ही साथ-साथ रहने वाले इन स्तनों को छिपाए रखने में इसका हुनर।... भाई वाह;... चोली की जितनी भी प्रशंसा करो; कम है। अजी इसीलिए तो संसार में सर्वोत्कर्षशाली भी है! —

सद्वृत्तयोः कठिनयोरुन्नतयोः सततनिकटसंस्थितयोः।
हृदयगयोरपि गुप्त्यै गुणमय्येवेति कञ्चुकी जयति।।५४

'हाय-हाय!... इतने सुन्दर, सुकोमल, वृत्ताकार, उन्नत, सरस और कृष्ण-मुख स्तनों का भी निर्दयतापूर्ण मर्दन इसलिए हुआ कि वे कठोर (निर्दयी) थे! ठीक भी है कुटिलकर्मा और कठिन लोगों का; भले ही वे कितने भी सुन्दर और सरस क्यों न हों; मान-मर्दन तो होना ही चाहिए —

शिव शिव कृष्णमुखत्वे सद्वृत्तत्वेऽपि चोन्नतत्वेऽपि।
सरसत्वेऽपि च मर्दनमभवत्काठिन्यतः कुचयोः।।५८

'नायिका के हाथों में पड़े हे कंगन! स्वर्ण-निर्मित, सुन्दर और गोलाकार आप जैसे दिव्य-अलङ्करणों की (एवं सुवर्ण - सुन्दर वर्णों एवं शब्दों के प्रयोग, सद्वृत्त - सुन्दर छन्दों में प्रयुक्त तथा सुन्दर शब्द एवं अर्थालङ्कारों के प्रयोग के कारण काव्य का प्रतीयमान अर्थ 'ध्वनि') ध्वनि समस्त सचेतन के मन का हरण कर लेती है —

रे कङ्कणानि भवतां सद्वृत्तानां सुवर्णरचितानाम्।
दिव्यालङ्काराणां काव्यानां च ध्वनिर्मनो हरति।।५५

नीतिमुकुल आर्याछन्द में रचित १०८ पद्यों में पूर्ण होने वाला स्वतन्त्र शतक काव्य है जिसमें इसके अभिधान के अनुकूल नीति को विश्लेषित एवं व्याख्यायित किया गया है। नीति के इस विश्लेषण एवं व्याख्यान हेतु कवि ने परम्परा-प्राप्त शृङ्गार को मुख्य आधार बनाया है। *रतिमुकुल* में जहाँ रति अर्थात् शृङ्गार; प्रधान होकर नीति को विवेचित करता है वहीं *नीतिमुकुल* में नीति प्रधान होकर अपनी विवेचना हेतु रति का अवलम्ब ग्रहण करती है।

नीतिमुकुल को पढते, इसका पाठ सम्पादित करते और अनुवाद की प्रक्रिया से गुज़रते हुए हमने कई बार यह अनुभव किया कि मोडक की यह कृति, यह शतक *रतिमुकुल* और *रतिनीतिमुकुल* के सापेक्ष कुछ न्यून बन पड़ा है। इन दोनों शतकों की वह प्रवाहमयी भाषा, शैली, वर्ण्य-विषय के सापेक्ष बिम्बों और प्रतीकों का चुनाव आदि सब की सब वह विशेषताएँ *नीतिमुकुल* में नहीं दीख पड़तीं। इन सबसे हम यह अनुमान भी करते रहे कि हमारे कवि ने *अ.मञ्जरी* में सबसे पहले *नीतिमुकुल* के पद्यों का निर्माण किया होगा और धीरे-धीरे जब नीति के लिए लिखे जा रहे पद्यों में वज़न आता गया होगा, विषयानुकूल पद्यों की संख्या बढती गई होगी उसने अन्य विषयों; रति और रति-अनुस्यूत नीति सम्बन्धी पद्यों का भी निर्माण कर उपर्युक्त मुकुलों की योजना तैयार कर ली होगी।

उदाहरण के लिए *नीतिमुकुल* के कुछ पद्य प्रस्तुत हैं —

हालाँकि बड़ी मीठी आवाज़ में अभी कानों के पास स्तुति-गायन कर रहा है, मगर पिशुन हो या मच्छर; अन्ततः डसेगा ज़ुरूर और डस कर ख़ून भी चूसेगा ही —

यद्यपि कर्णे जपति क्वणितैरधुना तथापि परिणामे।
रुधिरं पास्यति दंशं विधाय पिशुनश्च मशकश्च।।१५

बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि बली और नीच आश्रयदाता को पाप में प्रवृत्त देख कर भी उसकी उपेक्षा करे। अपनी ही माता से सहवास पर उद्यत साँढ़ को भला समझाते-बुझाते हैं? उसे रोकते हैं? —

पापे प्रवर्तमानोऽप्युपेक्ष्य एवाश्रयी बली नीचः।
नहि मातरमपि रन्तुं वृषः प्रवृत्तो निवार्योऽस्ति।।२७

सरस सुन्दर चञ्चल लहरें हों या चञ्चल लहरों सी, हिरनियों सी आँखों की नज़्ज़ारःकशी; अजी दोनों ही एक समय आता है कि क्षणमात्र में नष्ट हो जाती हैं। अब क्षणमात्र में विनष्ट हो जाने वाली इन सुन्दर चीज़ों से भला यह तो सीख लेनी ही चाहिए कि बुद्धिमान् 'स्थितप्रज्ञ' हो बैठ रहे —

क्षणमात्रं सद्वृत्तः सरसोऽपि च किं तरङ्ग इह भङ्गम्।
नैति कुरङ्गापाङ्गोऽप्यतः स्थितप्रज्ञतैवैष्या।।७२

रतिनीतिमुकुल भी आर्या-छन्द में निबद्ध 101 पद्यों पर पूर्ण एक स्वतन्त्र शतक काव्य है जिसमें रति-अनुस्यूत नीति का वर्णन किया गया है। स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती दोनों मुकुलों की अपेक्षा इसमें 'रति' और 'नीति' दोनों को ही वरीयता दी गई है। इस मुकुल की विशेषता यह है कि प्रस्तुत शतक-काव्य संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध पारम्परिक शृङ्गारशतकों से पृथक् अत्यन्त ललित तथा मृदु शृङ्गारिक विषय-वस्तुओं, तथ्यों एवं प्रतीकों की सहायता से नीति को व्याख्यायित या निरूपित करता है।

शृङ्गार द्वारा नीति को विवृत करते हुए कवि ने पूर्व की भाँति यहाँ भी अपने प्रिय विषयों (अध्यात्म तथा दर्शन के सम्प्रत्ययों) को वह वरीयता दी है और इससे नीति का वह दार्शनिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप इन कविताओं में प्रकट हो आया है, जो वेदान्तादि शास्त्रों में बड़े दुरूह और दुर्बोध शैली में प्रतिपादित थे।

शृङ्गारिक विषयों, तथ्यों तथा प्रतीकों में इस प्रकार आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा नैतिक-मूल्यपरक सम्प्रत्ययों को सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत करने से ग्रन्थकार का आशय क्या हो सकता है यह तो इदमित्थं नहीं कहा जा सकता; किन्तु प्राथमिक दृष्ट्या यही प्रतीत होता है कि कवि ऐसे शृङ्गारिक-तथ्यों में नीति के तथाविध प्रतिपादन द्वारा सांसारिक सुखकर विषयों से अलग हट कर मनुष्य को नैतिक-मूल्यों तथा आध्यात्मिक मार्ग की ओर उन्मुख करना चाहता है। इन पद्यों के आलोक में कवि का जो व्यक्तित्व प्रकट होता है वह उसे एक उच्चकोटि के विरक्त, पहुँचे हुए भगवद्भक्त तथा उत्कृष्ट साधक की कोटि पर पहुँचाता है। निश्चय ही अच्युत इसी प्रकार के किसी व्यक्तित्व के धनी रहे होंगे।

उदाहरण के लिए एक-दो पद्य *रतिनीतिमुकुल* से भी उद्धृत किए जा रहे हैं —

'साधु-आचरण और चरित का अतिक्रम कभी नहीं करना चाहिए! देखिए ना - कामिनियों के कुन्तल-कलाप को, सुगन्धित तैल के अनुलेपन ने भी उनके संयम को संयमित न रखा और संयम-भङ्ग होते ही उन्हें कुटिल होना ही पड़ा। अति-स्नेह वशात् भी, कभी भी सद्वृत्तातिक्रम और संयम-भङ्ग न करें —

स्नेहभरादपि केशैः सद्वृत्तातिक्रमो न कर्तव्यः।
नो चेत् संयमभङ्गात्कौटिल्यं प्रकटमेव स्यात्।।६३

पिशुन व्यक्ति को अपने छाती लगा रखो, हृदय से लगा रखो, हार और चन्दन से अलङ्कृत कर उनका सत्कार करो; किन्तु ये पिशुन अपनी कठिनता (कुटिलता) कामिनियों के स्तनों के समान कभी न छोड़ेंगे —

उरसि धृतोऽपि च हारैरलङ्कृतोऽपि चन्दनतः।
ललनास्तन इव पिशुनः काठिन्यं नैव हा त्यजति।।६६

अद्वैतामृतमञ्जरी का पूर्ण रूप

स्वयं आचार्य मोडक के साक्ष्यों से हम पीछे यह कह आए हैं कि *अ.मञ्जरी* में तीन मुकुल समाहित हैं - *रतिमुकुल, नीतिमुकुल* एवं *रतिनीतिमुकुल*। पीछे इनसे सम्बन्धित विस्तृत परिचर्चा प्रस्तुत की जा चुकी है। किन्तु यहाँ एक आवश्यक तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना उचित जान पड़ता है और वह है *अ.मञ्जरी* का पूर्ण रूप। मोडक ने *साहित्यसार* में काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों, घटकों और कारकों को कभी परिभाषित और कभी व्याख्यायित करने हेतु जिन पद्यों को *अ.मञ्जरी* से उद्धृत किया है

उन पद्यों में दो तरह के पद्य हैं। एक तरह के पद्य वह हैं जिन्हें प्रस्तुत करते हुए मोडक *अ.मञ्जरी* के मुकुल का भी उल्लेख करते हैं। ऐसे पद्य जिनके मुकुल का उल्लेख करते हुए *साहित्यसार* में उन्हें उद्धृत किया गया है उनकी संख्या केवल चार है। इनमें एक पद्य *रतिमुकुल* से, एक पद्य *नीतिमुकुल* से और दो पद्य *रतिनीतिमुकुल* से उद्धृत हैं। ये चारों ही पद्य हमारी प्रकाश्य हस्तलिखित प्रतियों में भी यथावत् उपलब्ध हैं जिन्हें हम पीछे प्रस्तुत कर आए हैं और इन्हीं के आधार पर यह भी सिद्ध कर आए हैं कि सम्बन्धित मुकुलों में समाहित होने के कारण यह समस्त पद्य और सभी मुकुल अपने मूल रूप में *अ.मञ्जरी* हैं।

किन्तु *साहित्यसार* में मोडक अनेक ऐसे पद्यों को भी उद्धृत करते हैं जिनके बारे में वह यह नहीं कहते कि पद्य किस मुकुल में समाहित हैं। अर्थात् मोडक ने अनेक पद्य केवल *'मदीयायाम् अद्वैतमञ्जर्याम्'* या फिर *'मदीयायाम् अद्वैतामृतमञ्जर्याम्'* कह कर प्रस्तुत कर दिया है। अब समस्या यह है कि यदि *अ.मञ्जरी* में उपरिवत् तीन ही मुकुल हैं और इन्हीं मुकुलों पर यह काव्य-ग्रन्थ परिपूर्ण हो जाता है तो वे पद्य हमारे प्रकाश्य मुकुलों और इस रूप में प्रकाश्य *अ.मञ्जरी* में समाहित क्यों नहीं हैं?

तो क्या *अ.मञ्जरी* में कुछ अन्य मुकुल भी थे? हम इस प्रश्न की यथार्थता के पक्षधर नहीं। कारण कि *साहित्यसार* में मोडक ने *अ.मञ्जरी* में समाहित होने वाले तीन ही मुकुलों के नाम लिए हैं। यदि अन्य मुकुलों की सत्ता होती तो मोडक इन पद्यों को सम्बन्धित मुकुल में समाहित बताते। किन्तु वह ऐसा नहीं करते, अपितु केवल *'मदीयायाम् अद्वैतामृतमञ्जर्याम्'* कह कर पद्य प्रस्तुत करते हैं।

तो क्या *अ.मञ्जरी* के उपलब्ध मुकुलों में पद्यों की संख्या ग़लत है? हम ऐसा भी नहीं कह सकते। कारण कि *रतिमुकुल* और *रतिनीतिमुकुल* की दो-दो हस्तलिखित प्रतियाँ हमें अलग-अलग स्थानों से प्राप्त हुई हैं। दोनों में ही पद्यों की संख्या समान है। यदि ऐसा होता तो किसी न किसी पाठ में मोडक द्वारा तद्वत् सूचित दो-चार पद्य अवश्य आ गए होते।

तो फिर इस समस्या का समाधान क्या है? हम सम्पादकों व अनुवादक की अपनी अधूरी समझ से इसका रहस्य है मोडक द्वारा नित्यप्रति तत्तद्विषयक पद्यों का रचते जाना और भविष्य में इन्हें तत्तत् मुकुलों में समाहित कर देने की योजना। एक रहस्य यह भी कि *साहित्यसार* जैसे दुरूह, विशालकाय, विविध आयामों वाले ग्रन्थ के लेखन में जब जिस काव्य-घटक को परिभाषित या व्याख्यायित करने का अवसर पड़ा, प्रातिभ कवित्व

के धनी मोडक ने हाथ के हाथ सम्बन्धित घटक को परिभाषित या व्याख्यायित करने वाला पद्य वहीं रच दिया हो और मुकुलों के झंझट में पड़े बग़ैर *अ.मञ्जरी* के नाम से उसे प्रस्तुत कर दिया हो। यह भी हो सकता है कि इन पद्यों की सहायता से आचार्य के मनो-मस्तिष्क में कोई और भी अज्ञातनामा मुकुल अपना आकार ले रहा हो; किन्तु विकराल काल ने इसका अवसर हमारे इस कवि को न दिया हो।

नीचे हम उन पद्यों को प्रस्तुत करते हैं जिन्हें मोडक ने किसी भी मुकुल का नाम लिए बिना *साहित्यसार* में प्रस्तुत तो किया है, किन्तु यह पद्य हमें उपलब्ध *अ.मञ्जरी* के तीनों ही मुकुलों की किसी भी प्रति में उपलब्ध नहीं होते। सा.सार में ये पद्य कहीं-कहीं अशुद्ध छपे हैं अतः भ्रम की स्थिति में इन पद्यों का मिलान और इनका पाठान्तर *साहित्यसार* से करना चाहिए —

सर्प इव भवति पिशुनस्तद्दंष्ट्रेव चास्य वागस्ति।
तद्गतिरिवास्य रीतिस्तत्तनुरिव चास्य वै प्रकृतिः।।

सा.सार, पृ.-510.

धैर्यपयोनिधिचन्द्रः शिविर्दधीचिविवेकदिनसूर्यः।
कार्पण्यतृणकृशानुः समभूत्कर्णः क्व तत्र वयम्।।

साहित्यसार, पृ.-401, सा.सार, पृ.-529

स्वरसप्रकाशकानां यथा यथा विकसनं सुविमलानाम्।
विमलात्पाषाणादपि तथा तथा जायते रसः स्वच्छः।।

साहित्यसार, पृ.-214, सा.सार, पृ.-279,502.

सालङ्कृतिरपि मधुरध्वनियुक्तापि प्रगल्भवृत्तापि।
जनयति किं मुमुक्षोर्भियमिह गौर्विशदशृङ्गारे।।

साहित्यसार, पृ.-283, सा.सार, पृ.-371.

रसभरितापि गतरसा चतुरतरापि प्रमन्थरोत्त्थाने।
विलसति मतिरेकान्ते शान्तस्येयं रतान्तकान्तेव।।

साहित्यसार, पृ.-315, सा.सार, पृ.-26, 414, 505.

बहुगुणमयी नवीना तन्वी गिरिवरनितम्बतटलीना।
कान्ता न वायुरयं प्रसारिता कालभिल्लेन।।

साहित्यसार, पृ.-415, सा.सार, पृ.-549.

अतिशीघ्रगतोऽपि मन्दं गच्छन् दृष्ट्वैव जीवितं हर्तुम्।
जनयति कान्ताभ्रान्तिं कालोऽयं लोललोकस्य।।

साहित्यसार, पृ.-418, सा.सार, पृ.-554.

रहसि प्रियसख्यामपि वक्तुं या ह्रीः कुलीननववध्वाः।
निजकान्तसङ्गवृत्तं सैव मुनेर्ब्रह्मसुखकथने।।

साहित्यसार, पृ.-403, सा.सार, पृ.-533.

यत्क्षण इह द्विजिह्वाः क्षमात्यजस्तत्प्रभोः शिरस्यपि च।
येन क्षमैव निहिता तत्क्षण एवैष जयति जगदीशः।।

साहित्यसार, पृ.-160, सा.सार, पृ.-571.

अनुभूतचित्वरूपानन्दोक्तैवोपदेशवाक् फलति।
नहि दर्शयितुं क्षमते जन्मान्धश्चन्द्रमन्येभ्यः।।

साहित्यसार, पृ.-144, सा.सार, पृ.-582

परहृदयहरणनिपुणः सरलधुरीणः श्रितावरितसगुणः।
चन्द्रापीडं प्रथयन् जयति सहस्राशयो बाणः।।

साहित्यसार, पृ.-461, सा.सार, पृ.-616

* विद्युत्पयोधरेऽभूत् क्वापि न विद्युति पयोधरो दृष्टः।
अद्य तु विपरीतमिदं मन्दगविद्युति पयोधरद्वन्द्वम्।।

साहित्यसार, पृ.-485, सा.सार, पृ.-650

राधेऽङ्गरागमिह न क्वचिदपि धत्से कुतस्त्वमुरसीष्टम्।
नित्यं दधामि कौङ्कुममिति चेन्नो लक्ष्यते कस्मात्।।

साहित्यसार, पृ.-512, सा.सार, पृ.-692

---

* *तुलनीय - रतिमुकुल, पद्य सं.-69.*

सरसमपि सादि शान्तं तव तारुण्यं कथं कृतं विधिना।
यद्यत्सद्वयमेतत् तथेति सुदृशां तु सिद्धान्तः।।

साहित्यसार, पृ.-517, सा.सार, पृ.-700

वल्मीकान्मुनिमिषतः किमनन्तः प्रादुरास यदि नेदम्।
तद्वाक्यललितकण्ठः को वा नाभूच्छिवः साक्षात्।।

साहित्यसार, पृ.-524, सा.सार, पृ.-712

श्रुतमपि विलङ्घयन्तं संदृष्ट्वा वैदिको न कः स्नायात्।
यामिनामिवेह जिनमपि जिनमिव परकामिनीकटाक्षमपि।।

सा.सार, पृ.-502

हा हन्त हन्त कान्ते तव सीमन्ते न कति नवान्तकिताः।
बिम्बं बिनावलम्बे तदहं साम्बं निरालम्बम्।।

सा.सार, पृ.-440.

नहि राधे त्वत्तुल्या रम्या भूतेऽपि वर्त्तमानेऽपि।
भाविन्यपि प्रपञ्चे तथापि किञ्चित्समाम्बुजिनी।।

सा.सार, पृ.-516

अन्तर्विहरज्वाला मिहिरज्वाला बहिर्दहन्ती मां।
पतिमन्तरा कुरङ्गीमिव तु कृशाङ्गीं हरेर्विनाऽद्य त्वाम्।।

सा.सार, पृ.-491

यहाँ एक आवश्यक सूचना की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। सम्भवतः मोडक ने *अद्वैतमञ्जरी* के नाम से किसी अन्य ग्रन्थ का भी प्रणयन किया था जो आर्या छन्द में ही है और इसमें भी अद्वैतवेदान्त के दुरूह सिद्धान्तों का सलक्षण वर्णन है। यह सम्भवतः व्याख्यापरक ग्रन्थ है, क्योंकि मोडक कई बार अपने ग्रन्थों में इसे *'मदीयेऽद्वैत-मञ्जरीनाम्नि निबन्धे सव्याख्ये'* कह कर इसके पद्यों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसके 25 पद्यों को उन्होंने विद्यारण्यमुनि के *जीवन्मुक्तिविवेक* की स्व-कृत टीका *पूर्णानन्देन्दु-कौमुदी* (पृ.-52, 112-121) में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अपने *बोधैक्यसिद्धि* नामा ग्रन्थ (पृ.-316) में भी इस अज्ञात ग्रन्थ से एक पद्य प्रस्तुत करते हैं।

इन पद्यों का हमारी प्रकाश्य *अ.मञ्जरी* से मिलान करने पर पाया गया कि विषय और प्रतिपाद्य की दृष्टि से ये पद्य *अ.मञ्जरी* से मेल नहीं खाते। संस्कृत-साहित्य के भावी अनुसन्धित्सुओं से निवेदन है कि वह मोडक की इस *अद्वैतमञ्जरी* के रहस्य से पर्दा उठावें।

अच्युतराव मोडक : परिचय

अच्युतराव मोडक संस्कृत-साहित्य के इतिहास में अल्पश्रुत एवं अनालोचित काव्यशास्त्री आचार्य हैं। इनकी अल्प-प्रसिद्धि का मूल कारण संस्कृत में इनकी रचनाओं का अभाव नहीं; वरन् उपलब्ध कृतियों की समीक्षा, आलोचना एवं उनके मूल्याङ्कन का अभाव है। मोडक के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विवरण हेतु संस्कृत-साहित्य के विविध इतिहास ग्रन्थों, सन्दर्भ-ग्रन्थों तथा सूचीपत्र आदि का अवलोकन किया गया; किन्तु एकाध टिप्पणियों तथा सूचनाओं के अतिरिक्त कोई विशिष्ट सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाई। संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थों में मोडक की चर्चा 'नहीं' के बराबर है। कोश-ग्रन्थों में अब तक प्रकाशित सबसे महत्त्वपूर्ण विश्वकोशों में भी मोडक से सम्बन्धित विवरण अनुपलब्ध हैं। संस्कृत-हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्रों में यदा-कदा इनकी सूचना तो दी गई है, किन्तु उतनी ही जितनी 'पाण्डुलिपि-विवरणिका' या 'हस्तलिखित-ग्रन्थ-सूची' के लिए आवश्यक होती है। इन सूचनाओं से हमारा कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

मोडक के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से सम्बन्धित प्रारम्भिक कुछ सूचनाएँ दो-तीन ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं। इनमें प्रथम है मोरो हरि खरे का *मोडककुलवृत्तान्त* नामा मराठी ग्रन्थ जिसमें खरे ने अच्युतराव मोडक के जाति-वंश, जीवन, काल एवं कर्तृत्व पर बहुत ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। मोडक पर निम्नलिखित तीन विद्वानों और उनकी मोडक सम्बन्धी सूचनाओं का आधार खरे का यही ग्रन्थ है।

सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव अपने समय के विख्यात कोशकार एवं इतिहासविद् विद्वान् हो आए हैं। आपका मराठी भाषा में लिखित *मध्ययुगीन चरित्र कोश* अपनी तरह का अनोखा कोश है। चित्राव ने मोडक से सम्बन्धित जो विवरण दिये हैं उसके अनुसार —

"अच्युतराय मोडक एक संस्कृत कवि हो आये हैं । ये नासिक के समीप के रहने वाले थे। रघुनाथ भट्ट उनके गुरु थे। इनकी 'कृष्णलीला' नामा संस्कृत-काव्य बहुत ही मनोहारी है। इसके अलावा अन्य भी बहुत से रोचक काव्य-ग्रन्थ इनके लिखे हैं। त्र्यंबकराज बाबा गोसावी नाशिककर इनके सुयोग्य शिष्य थे। शक संवत् 1700 में

इनका जन्म हुआ और 55 वर्ष की अवस्था में शक संवत् 1755 में नाशिक के समीप ये मृत्यु को प्राप्त हुए; ऐसी लोकप्रसिद्धि है।"[3]

प्रो. वी. राघवन् ने मोडक से सम्बन्धित जो विवरण दिया है उसके अनुसार —

"अच्युतराय मोडक के पिता का नाम 'षष्टि नारायण' एवं माता का नाम 'अन्नपूर्णा' था। मोडक, आदित्य सच्चिदानन्देन्द्र सरस्वती के सुयोग्य शिष्य थे। शिव की पराभक्ति में मोडक को दीक्षित करने वाले गुरु थे कोई 'महादेव' जबकि मोडक ने अपने एक अन्य गुरु का उल्लेख अपनी एक कृति 'भागीरथीचम्पूः' (जो कि ईस्वी सन् 1814 में प्रणीत हुआ था) में किया है, ये हैं 'रघूत्तमाचार्य'।"[4]

मोडक के व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन तथा उनकी गुरुपरम्परा पर कुछ प्रामाणिक सामग्री G. V. Tagare ने भी अपने एक लेख में प्रकाशित कराया है; किन्तु यह लेख मोरे हरि खरे कृत *मोकुवृ.* तथा स्वयं मोडक के ही एक ग्रन्थ *अवैदिकधिक्कृति* के आधार पर प्रणीत होकर भी बहुत अंशों में मोडक के पूर्ण व्यक्तित्व को दर्शाने में अपर्याप्त है।[5]

अस्तु, मोडक पर उपलब्ध अधुनातन सामग्रियों तथा उनके ग्रन्थों की सहायता से उनके पारिवारिक जीवन, व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर उपलब्ध सूचनाएँ निम्नवत् हैं —

अच्युतराव मोडक का वास्तविक अभिधान

यद्यपि कि संस्कृत-साहित्य के इतिहास में हमारे विवेच्य कवि 'अच्युतराव मोडक' के नाम से विख्यात हैं; किन्तु आपका वास्तविक नाम 'रावजी विश्वनाथ मोडक' था और सामान्य जनता में आप 'राउजी विश्वनाथ मोडक' कहकर भी पुकारे जाते थे। इस तथ्य की सूचना G. V. Tagare ने निम्नवत् दी है —

The original name of the famous Sanskrit scholar, poet, critic and Vedantin Acyutraya Modaka (1778-1833 A.D.) was Ravji Vishvanatha Modaka (commonly spelt as Raoji Vishwanath Modaka).[6]

---

3. *मध्ययुगीन चरित्र कोश, पृ. 5-7.*
4. *New Catalogous Catalogorum, vol.-1, pp. 74.*
5. *Tagare, G V., Acyutraya Modaka's Avaidik-Dhikkriti, pp. 215-220.*
6. *उपरिवत् पृ.-215*

किन्तु टागरे साहब की इस सूचना के विपरीत *मोकुवृ. (पृष्ठ 198-199)* के अनुसार हमारे आचार्य का नाम केवल 'रावजी' था। दाक्षिणात्य परम्परा के अनुसार 'रावजी' इस नाम के बाद उनके पिता का नाम 'विश्वनाथ' पद सम्मिलित कर आपका नाम स्थिर हुआ 'रावजी विश्वनाथ' और कुलनाम 'मोडक' को सम्मिलित करने के बाद आपका पूर्ण अभिधान संयत हुआ - रावजी विश्वनाथ मोडक। मोडक के कुछ अन्य नामों की ओर भी हमें प्रामाणिक सामग्री प्राप्त हुई है। *बोधैक्यसिद्धि* की स्वकृत *अद्वैतात्मबोध-टीका, साहित्यसार* की *सरसामोद-टीका, भालचन्द्रचम्पूप्रबन्ध* आदि ग्रन्थों की अन्तिम पुष्पिका में वह स्वयं को 'अच्युतशर्मविद्यार्थी' कह कर सम्बोधित करते हैं -

मोडकोपाह्वेनाच्युतशर्मणा विद्यार्थिना विरचितो भालचन्द्रचम्पूप्रबन्धः सम्पूर्णः।

जन्म-स्थान एवं समय

मोडक महाराष्ट्र के वशिष्ठ-गोत्रीय ब्राह्मण थे। किन्तु महाराष्ट्र में किस स्थान पर इनका जन्म हुआ इस पर कुछ चर्चा अपेक्षित है। अपनी रचनाओं में मोडक ने कहीं 'पञ्चवटी' तो कहीं 'पञ्चनदी' के रूप में अपनी मातृभूमि का उल्लेख किया है; किन्तु ये दोनों ही स्थान महाराष्ट्र के दो भिन्न मण्डलों में अवस्थित हैं अतः इनमें से किस मण्डल में इनका जन्म हुआ यह विचारणीय है। टागरे साहब ने स्वयं मोडक की एक रचना *अवैदिकधिक्कृति* के साक्ष्य से इस स्थान को महाराष्ट्र के 'रत्नगिरि-मण्डल' स्थित 'पञ्चनदी' के रूप में चिह्नित किया है।[7] मूल साक्ष्य निम्नवत् है —

भक्तानां पञ्चनद्यां चिरमुपलभतां देशमुख्यत्वमीज्यं
विप्राणां वेद एव स्थिरतरमनसां सत्कुले यस्य जन्म।

इस प्रकार स्वयं मोडक के उल्लेख से प्रकट है कि उनका जन्म पञ्चनदी नामक स्थान में हुआ और टागरे साहब के अनुसार यह पञ्चनदी 'रत्नगिरि'-जिले में अवस्थित थी। अब 'पञ्चवटी' के कारण जो आपके सन्दर्भ में भ्रम की स्थिति बनी हुई है उसका रहस्य यह है कि आपके जन्म के बाद कालान्तर में आपके पिता विश्वनाथ नारायण

---

7. *The original home of this Modaka family was at Panchnandi, a village near Dabhol, in the Dapoli Taluqa of the Ratnagiri District (Bombay state). Vishvanatha Narayana Modaka, the father of this author, seems to have migrated from Panchanadi to kavada (Dist. Thana), and finally settled at Nasik. The name of the author's father appears as Narayana also. (उपरिवत् p.-217)*

'थाने'-(ठाणें)-जिला के 'कवाड' नामक स्थान पर जा बसे[8] और यहाँ से फिर विविध कारणों से 'नासिक' स्थित 'पञ्चवटी स्थान पर आकर बस गए। मोडक का समग्र जीवन नासिक-स्थित इसी पञ्चवटी में व्यतीत हुआ। इस तथ्य का उल्लेख भी मोडक स्वयं अपनी कई रचनाओं में करते हैं। यहाँ *भागीरथीचम्पू* (उच्छ्वास-7, पद्य-82) का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं —

रघुवरगुरुपदकमलं नत्वा कृतमस्य तुष्टये काव्यम्।
इदमच्युतेन वसता सत्क्षेत्रे पञ्चवट्यभिधे।।

नासिक से मोडक के लगाव और प्रेम का एक उत्कृष्ट उदाहरण *रतिमुकुल* (पद्य-50) में भी प्राप्त होता है। निम्नलिखित पद्य में मोडक ने 'नासिक' पद में श्लेष द्वारा इस नगर में रहने वाले नागरिकों और युवतियों की नाक में शोभा पाने वाले आभूषण की योग्यता का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है —

सद्वृत्तभूरिभास्वरसरत्नमुक्ताश्रितः सुवर्णगुणः।
य इह स एव तु नासिकनिवसतियोग्यः कृतातिसौभाग्यः।।

मोडक के जन्म-काल के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि खरे ने *मोकुवृ.* में इनका जन्म शक संवत् 1700 (1778 ई.) में सूचित किया है[9] और खरे के इस विवरण को परवर्ती समस्त मोडक-अध्येता विद्वान् एवं संस्कृत-साहित्य के इतिहासकारों ने खरे का नाम लिए बग़ैर यथावत् स्वीकार कर लिया है।

माता एवं पिता

यूँ तो मोडक ने अपनी अधिकांश कृतियों में अपने माता-पिता का उल्लेख किया है; किन्तु *अवैदिकधिक्कृति* (पद्य-17) में उन्होंने न केवल माता अथवा पिता का, अपितु अपने पितृव्य का भी नाम्ना उल्लेख किया है —

श्रीमन्नारायणाख्यो गुरुरिव जनको यस्य विख्यातकीर्तिः
माता यस्याऽन्नपूर्णाऽनुपमगुणवती शास्त्रविद्येव साध्वी।
यस्य श्रीमान्पितृव्यः समजनि परमाचार्यवद्रामचन्द्रः
कावेरी यस्य धात्री परमहितकरी ब्रह्मविद्योपमाऽऽसीत्।।

---

8. *मोडककुलवृत्तान्त, पृ.-197*
9. *उपरिवत्, पृष्ठ-206.*

यद्यपि इस पद्य के अनुसार आपकी माता का नाम अन्नपूर्णा और पिता का नाम नारायण था जिसे आपने अपना गुरु भी बताया है। किन्तु स्मरण रहे कि आपके पिता का नाम, मात्र नारायण नहीं; अपितु 'नारायण विश्वनाथ' है। नारायण आपके पितामह का नाम था जो कि आपके पिता के नाम में भी अनुगत हुआ। अस्तु, रामचन्द्र इनके पितृव्य (चाचा) का और कावेरी इनकी धात्री (धायी) का नाम था।

पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ हम मोडक-कुल के वंश-वृक्ष को संक्षेप में प्रस्तुत किए देते हैं। विशेष विवरण हेतु *मोकुवृ.* नामा ग्रन्थ (पृ. 198-200) देखना चाहिए —

---
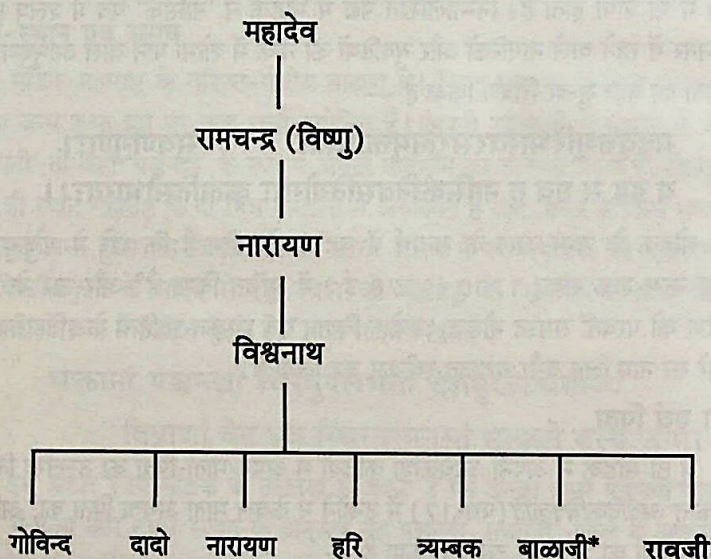
* *मुम्बई से 1869 ई. में प्रकाशित नीतिशतपत्र में इसके सम्पादक का नाम गोविन्दात्मज बालशास्त्री मोडक उल्लिखित है। यह हमारे कवि अच्युतराव मोडक के पौत्र ठहरते हैं। मोकुवृ. में प्रस्तुत वंशवृक्ष के अनुसार यह बालशास्त्री, बाळाजी के पौत्र और गोविन्द के पुत्र बाळकृष्ण हैं। इन्हीं बाळकृष्ण मोडक के पुत्र गणेशशास्त्री मोडक ने पञ्चदशी के प्रस्तावना-लेखक बालकृष्णशर्मा-उपासनी को अच्युतराव मोडक के ग्रन्थों तथा उनकी मृत्यु से सम्बन्धित तथ्यों की सूचना प्रदान की थी। जिसकी चर्चा हम आगे पृ. 28-29 पर करेंगे।*

मोडक-कुल-संस्कृति

मोकुवृ. नामा अपने ग्रन्थ में खरे ने मोडक-कुल के कुल-देवता, कुलधर्म, कुलाचार, वृत्ति आदि का संक्षिप्त उल्लेख भी किया है। पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ इनसे सम्बन्धित परिचर्चा प्रस्तुत है —

हमारे विवेच्य कवि अच्युतराव मोडक के कुलदेवता या कुलस्वामी कोळथन्या के कोळेश्वर हैं जिनकी सङ्गति जोगेश्वरी से मिलती है। खरे के अनुसार इस घराने के वार्षिक नैवेद्य आदि कुलधर्म का किसी ने उल्लेख नहीं किया है तथापि मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से देवदिवाली तक कोळेश्वर, जोगेश्वरी, रामेश्वर, वीरेश्वर, चिंचवली, बोरघर और इनसे इतर भी ग्रामदेवता की पूजा-उपासना, नैवेद्य-प्रदान आदि यह कुल किया करता था।[10] अपने गोत्र, कुलनाम, कुलभूमि, कुलदेवता, कुल ऋषि, कुलाचार आदि से सम्बन्धित इन तथ्यों को निम्नलिखित पद्य में बड़े संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर दिया है[11]-

श्रीमद्वाशिष्ठगोत्रामृतनिधिजनुषां मोडकोपाह्वयानां
योगेश्वर्याञ्च कोळेश्वरहरपदयोर्जामदग्न्ये च रामे।
भक्तानां पञ्चनद्यां चिरमुपलभतां देशमुख्यत्वमीज्यं
विप्राणां वेद एव स्थिरतरमनसां सत्कुले यस्य जन्म।।

शिक्षा-दीक्षा एवं गुरु-परम्परा

अट्ठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदी के महान् वेदान्ती, संस्कृत-विद्या के अप्रतिम आचार्य और प्रातिभ कवित्व से सम्पन्न आचार्य अच्युतराव मोडक की शिक्षा-दीक्षा पर उपलब्ध स्रोतों में प्रथम कोटि के स्रोत स्वयं मोडक की अपनी कृतियाँ ही हैं। द्वितीय कोटि के स्रोतों में मोरे हरि खरे, टागरे, बालकृष्णशर्मा-उपासनी आदि परवर्ती मोडक-अध्येता विद्वानों के तत्परक शोधकार्य आते हैं। मोडक के सन्दर्भ में कुछ जनश्रुतियाँ भी लोक में प्रचलित हैं जिन्हें हम आवश्यकता पड़ने पर तृतीय कोटि का स्रोत मान सकते हैं। इन सभी स्रोतों के आधार पर मोडक की शिक्षा-दीक्षा एवं उनकी गुरुपरम्परा पर कुछ प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है —

आचार्य मोडक की प्रायः सभी कृतियों में उनके तीन गुरुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। पहले हैं - नारायणशास्त्री जिनका उपनाम षष्ठि है। इन्होंने हमारे विवेच्य कवि

---

10. विशेष विवरण हेतु देखिए - मोडककुलवृत्तान्त, पृ.-197.

11. Tagare, G V., Achyutaraya Modaka's 'Avaidik-Dhikkriti', p.-216.

अच्युत को संस्कृत-विद्या के विभिन्न शास्त्रों से परिचित कराया। दूसरे हैं - महादेव; जिन्हें मोडक ने प्रायः ही 'स्वरूपानन्द' कह कर सम्बोधित किया है। अच्युत ने इनसे संन्यास की दीक्षा ली थी।

तीसरे हैं - रघुनाथ भट्ट; जिनके लिए मोडक ने प्रायः ही अपने ग्रन्थों में 'हरावतार' पद का प्रयोग किया है। हमारे आलोच्य कवि अच्युत ने इनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी।

उपर्युक्त तीनों ही गुरुओं के नाम मोडक ने अपनी सभी कृतियों के प्रारम्भ में और प्रायः ही ग्रन्थान्त और इसकी पुष्पिका में श्रद्धापूर्वक उद्धृत किए हैं। यथा - *बोधैक्यसिद्धि* की स्वकृत टीका *अद्वैतात्मबोध* में वह कहते हैं[12] —

इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमदद्वैतसच्चिदानन्दसरस्वतीपादपद्म-श्रीमत्स्वरूपानन्दाख्याच्युताश्रमपादसरोजश्रीमत्पदवाक्यप्रमाणक्षीरार्णवविहरण-श्रीमदद्वैतविद्येन्दिरारमण-श्रीमत्षष्ठ्युपनामक-जनस्थानक्षेत्रगोदावरीतीरवर्ती-नारायणशास्त्रि-हरहरिचतुराननावतारी-भूतसद्गुरुत्रयशिष्येण अच्युतशर्मणा विद्यार्थिना विरचिते ....

आचार्य मोडक बाल्यावस्था में मन्दबुद्धि और अध्ययन से भागने वाले विद्यार्थी थे। परन्तु गुरु नारायणशास्त्री के अनुग्रह से वह कुशाग्रबुद्धि और शास्त्रों में व्युत्पन्नमति हो उठे। इस विषय में सत्यप्रकाश शर्मा ने एक जनश्रुति का उल्लेख किया है[13] —

'छात्रजीवने अच्युतरायस्तु मन्दबुद्धिरभवत्। परं गुरुसेवायामस्य मनो भृशतरं रमते स्म। अतोऽस्मिन् गुरुः प्रगाढतरीं प्रीतिं निदधति स्म। नासिकवास्तव्यः षष्ठ्युपनामा नारायणशास्त्री तस्य गरुरासीत्। 'रविवार का रञ्जा' नाम्नि क्षेत्रे स्थिते नारायणशास्त्रिगृहे तच्छिष्यैः प्रतिदिनं प्रतिपादितं पुराणप्रवचनं श्रोतुमसंख्याः श्रद्धालवः समागच्छन्। मन्दबुद्धावपि अच्युते गुरोः सुगाढं स्नेहं वीक्ष्य अन्ये तु शिष्या अस्मै असूयन्ते स्म। एकदा गुरोर्वस्त्रप्रक्षालनार्थं गतेऽच्युते गोदातटे शिष्यैः गुरुषु निवेदितं यदच्युतोऽप्यद्य प्रवचनार्थं गुरुभिराज्ञापितो भवेत्। असूयाग्रसितानां शिष्याणां भावं सम्यग् विभाव्य गुरुणा ते समाश्वासिता यदद्य मध्याह्नकालिकं प्रवचनमच्युत एव करिष्यतीति। वस्त्राणि प्रक्षाल्य समागते अच्युते शिष्यवत्सलेन गुरुणा शक्तिपातो विहितो येनास्य प्रज्ञा स्फुरिताऽभवत्। नियतकाले प्रवचनार्थं समादिष्टेनाच्युतेन गुरुपादयोः सश्रद्धं प्रणम्य स्वकीयं प्रवचनं प्रारब्धम्। तदिदं प्रमाणपुरःसरमथ चातिगभीरं प्रवचनमाकर्ण्य असूयावन्तोऽपि ते सर्वे सञ्जातविस्मयाः तं प्रति नतमस्तकाः समभवन्। ततो गुरोराज्ञया असौ अनेकान् ग्रन्थान् प्रणीतवान्।'

12. बोधैक्यसिद्धि, पृ.-366.

13. भालचन्द्रचम्पू, प्रस्तावना, पृ.-5.

इस शक्तिपात विषयक जनश्रुति की पुष्टि स्वयं मोडक ने भी अपने एक ग्रन्थ में की है[14] —

'जनयेद्यः समावेशं शाम्भवः स हि देशिक' इत्यभिहितशक्तिपातादि-सामर्थ्यवान् इत्यर्थः।'

किन्तु जनश्रुति से प्राप्त सत्यप्रकाश शर्मा का उपर्युक्त विवरण हमें कुछ असङ्गत सा प्रतीत होता है। शर्मा जी ने शक्तिपात करने वाले आचार्य का नाम नारायणशास्त्री बताया है; किन्तु हमें प्राप्त *दृश्यविषयताखण्डन* के प्रमाण से यह ज्ञात होता है कि इस आचार्य का नाम नारायणशास्त्री नहीं, वरन् 'शाम्भव देशिक' के द्वारा सम्बोधित कोई आचार्य हैं। इतर साक्ष्यों से यह सप्रमाण ज्ञात है कि यह 'शाम्भव देशिक' आचार्य; 'महादेव'-संज्ञक स्वरूपानन्द थे। *प्रारब्धध्वान्तसंहृति* नामा अपने एक ग्रन्थ में मोडक अपने गुरुओं को प्रणाम करते हुए इनका भी उल्लेख करते हैं[15] —

श्रीमन्नारायणगुरून् श्रीमहादेवदेशिकान्।
श्रीमद्रघूत्तमाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः॥

दृश्यविषयताखण्डन में भी 'देशिक' सम्बोधन स्वरूपानन्द जी के लिए आया है -

श्रीमन्नारायणाचार्यान् श्रीमहादेवदेशिकान्।
श्रीमद्रघूत्तमगुरून् पादाब्जेषु नतोऽस्म्यहम्॥

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य मोडक में शक्तिपात करने वाले आचार्य मोडक के दीक्षा-गुरु स्वरूपानन्द ही थे न कि षष्ठ्युपनामक नारायणशास्त्री।

षष्ठ्युपनामक उपर्युक्त नारायणशास्त्री के सन्दर्भ में यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश आलोचकों ने इनके विषय में यह सम्भावना की है कि मोडक के यह आचार्य सम्भवतः उनके पिता 'नारायण विश्वनाथ' ही हैं। यह तथ्य यथावत् स्वीकार किया जा सकता है यदि 'षष्ठ्युपनामक' पद-प्रयोग का आशय स्पष्ट हो जाए। ध्यान रखना चाहिए कि मोडक के पिता 'नारायण विश्वनाथ' के नाम के साथ इस प्रकार का कोई विरुद प्रयुक्त नहीं प्राप्त होता। जबकि मोडक के विद्यागुरु नारायण के नाम के साथ ही इस पद का प्रयोग किया गया है अतः यह भी हो सकता है कि मोडक के पिता 'नारायण विश्वनाथ' उनके विद्यागुरु 'षष्ठ्युपनामक नारायण' से भिन्न कोई व्यक्ति हों।

---

14. दृश्यविषयताखण्डनम्, (हस्तलिखित प्रति, पत्र-7/ख).

15. Narahari, G.H., The Prarabdhadhvantasamhritih, pp. 115-118.

मोडक ने अपने तीसरे आचार्य के रूप में जिस व्यक्ति का उसी आदर, सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ स्मरण किया है वह हैं रघुनाथ भट्ट जिन्हें मोडक कभी 'रघूत्तमाचार्य' तो कभी 'रघुवीर' कह कर भी सम्बोधित करते हैं। इससे सम्बन्धित कुछ साक्ष्य हम ऊपर भी प्रस्तुत कर आए हैं। जबकि *अवैदिकधिक्कृति* की पुष्पिका में इनका नाम केवल रघुनाथ सूचित किया गया है[16] —

गुरुवररघुनाथश्रीपदाम्भोजयुग्मं
श्रुतिनिरतरतीनां सर्वदासद्विजानाम्।
अवनमभितनोतु स्वामृतैस्तन्त्रगन्धा-
दपि सततमितीदं नौमि संस्तत्परागः॥

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रघूत्तमाचार्य अलौकिक पाण्डित्य के धनी और विलक्षण योगसाधक थे। एक उच्चकोटि के साधक और यति होने के कारण ही मोडक ने इन्हें 'सच्चिदानन्द सरस्वती' जैसे गौरवशाली अभिधान से सम्बोधित किया है। मोडक ने इनसे ब्रह्मसिद्धान्त, अद्वैतवेदान्त और योगदर्शन का गम्भीर अध्ययन प्राप्त किया था। *साहित्यसार* (अमृतरत्न, पद्य-11) में उद्धृत एक पद्य रघूत्तमाचार्य से प्राप्त अद्वैतवेदान्त के अगाध ज्ञान ही नहीं; अपितु अद्वैत-दृष्टि को भी सङ्केतित करता है —

अद्वैतसच्चिदानन्देन्द्र - पादाम्बुरुह - द्वयम्।
प्रणमामि न मे येन भाति क्वापि क्वचिद् द्वयम्।।

रघुनाथ भट्ट की विकट योगसाधना सम्बन्धी एक जनश्रुति को सत्यप्रकाश शर्मा ने विस्तार से प्रस्तुत किया है।[17] अच्युत ने इन्हीं रघुनाथ भट्ट से योग और ब्रह्मविद्या का रहस्य प्राप्त किया था।

नासिक में गोदावरी नदी के तट पर रघुनाथ भट्ट का प्रसिद्ध मठ आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में 'भट्टजी का मठ' के नाम से साक्षात् किया जा सकता है। इस मठ के सामने ही एक भव्य मन्दिर भी है जिसमें स्थानीय लोगों के अनुसार 'भट्टजी का संजीवन समाधि' स्थित है।

इस प्रकार मोडक की स्वयं अपनी ही कृतियों में चर्चित उनकी गुरुपरम्परा के तीन आचार्यों की सूचना हमें प्राप्त होती है, जिनकी संक्षिप्त परिचर्चा ऊपर प्रस्तुत की गई।

---

16. Tagare, G.V., Achyutaraya Modaka's Avaidika-dhikkriti, p.-217.
17. भालचन्द्रचम्पू, प्रस्तावना, पृष्ठ-4.

पाण्डित्य

अच्युतराव मोडक विलक्षण शास्त्रीय प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य थे जिन्हें भारतीय दर्शनों पर अद्भुत अधिकार प्राप्त था। वेदान्त-दर्शन में उनकी कृतियाँ आश्चर्यचकित कर देने वाली हैं और इससे भी आश्चर्यकर है वेदान्तदर्शन के महनीय ग्रन्थों पर उनके द्वारा प्रणीत 'व्याख्या-साहित्य'। तन्त्र पर उन्हें विशिष्ट अधिकार प्राप्त था और इस क्रम में *सौन्दर्यलहरी* पर उनकी व्याख्या युगों तक याद की जाएगी।

मोडक लोकोत्तर प्रतिभा सम्पन्न महाकवि भी थे जिनके सरस स्तोत्र एवं लघुकाय प्रबन्ध-काव्य किसी भी सहृदय को आनन्द-विभोर कर सकते हैं। *दुःखक्षयेन्दूदयः* द्विविध-शृङ्गार परक उनका अनूठा काव्य है। इसमें विरहकातरा राधा का कृष्ण से समागम कराते हुए कवि ने शृङ्गार के दोनों ही पक्षों का बड़ा मनोरम वर्णन किया है। *गीतसीतापति* एक प्रकार का गीतिकाव्य है जो कि *गीतगोविन्द* के अनुकरण पर प्रणीत है। हैं तो इसमें तीन ही सर्ग, किन्तु मोडक का कवित्व और उनकी रससिद्धता इसमें सुतरां अवलोकनीय है। *कृष्णलीलामृतम्* छः सर्गों का एक काव्य है, जिसे हम महाकाव्य के रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। मोडक ने स्वयं इस पर टीका भी लिखी है।

मोडक का टीका-साहित्य-संसार बड़ा व्यापक है। *अमरुशतक* पर *शारदागम*, गोवर्धनाचार्य की *आर्यासप्तशती* पर *व्यङ्ग्यार्द्धनारीश्वर*, *भामिनीविलास* पर *प्रणयप्रकाश* और माधवाचार्य के *शङ्करदिग्विजय* पर *अद्वैतराज्यलक्ष्मी*; साहित्य-ग्रन्थों पर उनकी टीका-कला के अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

भागीरथीचम्पू तथा *भालचन्द्रचम्पू* के रूप में उनके दो चम्पूकाव्य भी उपलब्ध हैं। उन्होंने अपनी कुछ नाट्यकृतियों की भी सूचना अपने ग्रन्थों में दी है। *विशुद्धमाधवम्* नामक नाटक का उल्लेख वह *साहित्यसार* में करते हैं, किन्तु ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। *स्मरहरविहारभाण* के नाम से एक भाण भी उनके नाम से प्रसिद्ध है।

इन सबसे इतर *साहित्यसारम्* और इस पर स्वरचित *सरसामोद* नाम की टीका मोडक के साहित्यशास्त्रीय प्रौढ पाण्डित्य का निदर्शक ग्रन्थ है जो आज भी साहित्यशास्त्रियों के मध्य श्रद्धा के साथ उद्धृत किया जाता है।

मोडक के पाण्डित्य और उनके विलक्षण वैदुष्य का निदर्शन उनकी कृतियों के देखने से प्रत्यक्ष की जा सकती है। हम इस सन्दर्भ में पिष्टपेषण से बचते हुए विद्वानों से आग्रह करेंगे कि वे आचार्य मोडक के वैदुष्य एवं पाण्डित्य के ज्ञान हेतु आगे प्रदर्शित उनकी कृतियों का अध्ययन अवश्य करें।

संन्यास-ग्रहण

खरे ने *मोकुवृ.* में सूचित किया है कि मोडक अपनी युवा-अवस्था में ही संन्यासी हो गए थे। किन्तु *अवैदिकधिक्कृति* में उपलब्ध एक वाक्यांश के आधार पर G. V. Tagare का मानना है कि इस ग्रन्थ के रचना-काल तक; अर्थात् 1814 ई. तक मोडक ने संन्यास नहीं लिया था। इसे प्रमाणित करने हेतु उन्होंने मोडक की एक अन्य कृति *बोधैक्यसिद्धि;* जिसका रचनाकाल 1834 ई. है, -को भी प्रस्तुत किया है जिसमें मोडक ने अपने को 'यति' या 'संन्यासी' न कहकर केवल 'विद्यार्थी' ही कहा है - ....**'सद्गुरुत्रयशिष्येण अच्युतशर्मणा विद्यार्थिना विरचिते'**.... इसके अनुसार 1834 ई. तक मोडक ने संन्यास ग्रहण नहीं किया था।

उपर्युक्त विवरणों एवं मान्यताओं के विपरीत मोडक के संन्यास-ग्रहण का प्रामाणिक वर्ष शक संवत् 1756 (ईस्वी सन् 1834) के बाद का कोई वर्ष है। G. V. Tagare के अनुसार मोडक ने अपनी आयु के 56 वें वर्ष में संन्यास-दीक्षा ली और अपने देहावसान तक 'यति' का जीवन व्यतीत किया।

देहावसान

भारतीय दर्शनों के विश्रुत अध्येता, महान् वेदान्ती, तन्त्र-साहित्य के मर्मज्ञ, अद्भुत काव्यशास्त्री और लोकोत्तर कवि-प्रतिभा सम्पन्न संस्कृत का यह विश्रुत आचार्य आषाढ-शुक्ल, सोमवार, शक संवत् 1761 तदनुसार 22-जुलाई, 1839 ईस्वी को 61 वर्ष की आयु में इस धरा धाम को छोड़ कर पञ्चतत्त्व में विलीन हुआ।[18] उनके देहावसान से सम्बन्धित उपर्युक्त वर्ष एवं तिथि; *पञ्चदशी* पर मोडक की व्याख्या *पूर्णानन्देन्दुकौमुदी* की अपनी 'प्रस्ताविका' में बालकृष्णशर्मा-उपासनी ने प्रस्तुत की है।

---

18. मोकुवृ., पृ.-206 पर खरे ने इनका जन्म शक संवत् 1700 और मृत्यु 1755 में सूचित किया है जिसके अनुसार इनकी पूर्ण आयु मात्र 55 वर्ष ठहरती है। किन्तु यह विवरण प्रमादपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि अच्युत की अन्तिम रचना 'अमरुशतक' की 'शारदागम'-टीका शक संवत् 1757 में पूर्ण हुई थी। आनन्दाश्रम, पूना में उपलब्ध इसकी हस्तलिखित प्रति की अन्तिम पुष्पिका में यह तथ्य निम्नवत् उट्टङ्कित है -

शाकेऽस्मिन् मुनिबाणवाजिशशिभिः[1757] संख्यातसंवत्सरे
रम्ये मन्मथनाम्नि चापि करकाष्टम्यां बुधे पूरितः।....

(हस्तलिखित प्रति, पत्र-185/ख).

ऐसा कहा जाता है कि अच्युत के देहावसान से सम्बन्धित उपर्युक्त विवरण और इसका पुष्टिपरक निम्नलिखित खण्डित पद्य बालकृष्णशर्मा-उपासनी को अच्युतराव मोडक के वंशज गणेशशास्त्री मोडक ने उपलब्ध कराया था —

शाके चन्द्ररसर्षिभूपरिमिते ह्याषाढ शुक्ले शुभे
तारानायकवासरे शिवतिथौ सूर्ये खमध्ये स्थिते।
श्रीमत्सच्चिदनन्तनित्यविमलाऽनन्दप्रकाशात्मकः
प्रत्यग्ब्रह्मसरस्वती स्वमगमद्रूपं ग०००० ।।

ऐसी जनश्रुति और उल्लेख; दोनों प्राप्त होते हैं कि नासिक जिले के पञ्चवटी स्थित कपालेश्वर मन्दिर के समीप आचार्य मोडक की समाधि भी थी। सत्यप्रकाश शर्मा ने *भालचन्द्रचम्पू* की प्रस्ताविका में अपने समकालीन स्थानीय विद्वान् तात्याशास्त्री गर्गे के मुख से मोडक की इस समाधि की सूचना दी है। किन्तु जब हम (राइचरण कामल) पञ्चवटी की यात्रा पर थे और यहाँ इस समाधि को ढूँढने का प्रयत्न किया, यहाँ इस प्रकार के किसी समाधि को चिह्नित नहीं किया जा सका जो मोडक से सम्बन्धित हो। आश्चर्य तो यह कि पञ्चवटी का वर्तमान प्रबुद्ध वर्ग भी अच्युतराव मोडक के नाम तक से परिचित नहीं। उपर्युक्त मन्दिर के समीप आज-कल 'बाबाजी की समाधि (अजगर-बाबा)' अवश्य देखने को मिलती है जो कि अच्युतराव मोडक के समकालीन थे।

हम सप्रमाण तो नहीं कह सकते; किन्तु *मोकुवृ.* में प्रस्तुत हमारे कवि के वंश-वृक्ष को देखने से प्रतीत होता है कि अच्युतराव मोडक सम्भवतः अविवाहित ही रहे और इनसे वंश नहीं चला। अच्युत के भाईयों में गोविन्द, नारायण तथा बाळाजी की सन्ततियों का उल्लेख है जिनसे यह वंश पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा। उपर्युक्त बाळाजी के दो पुत्र हुए - सदाशिव एवं गोविन्द। गोविन्द के एकमात्र पुत्र बाळकृष्ण मोडक हुए, जिन्होंने 1869 ई. में अपने पितृव्य-पितामह और हमारे कवि अच्युतराव मोडक कृत *नीतिशतपत्र* को सम्पादित कर प्रकाशित कराया था। इन बाळकृष्ण मोडक के भी एकमात्र पुत्र गणेशशास्त्री मोडक ने *पञ्चदशी* की प्रस्तावना लिखने वाले बालकृष्णशर्मा-उपासनी को अच्युतराव मोडक के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व सम्बन्धी सूचनाएँ उपलब्ध कराई थीं।

इस प्रकार देखें तो 1870-80 ई. और इसके अगले कुछेक दशकों तक अच्युतराव मोडक पर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध थी, किन्तु दैवदुर्योग से या तो इन सामग्रियों को व्यवस्थित रूप में सङ्कलित नहीं जा सका या फिर सङ्कलित सामग्री को प्रकाशित नहीं कराया गया।

अच्युतराव मोडक : कर्तृत्व

उत्तरमध्यकालीन 'ब्रिटिश-शासन' के अधीन भारतीय इतिहास में यूँ तो संस्कृत-साहित्य एवं उसके वाङ्मय के पर्याप्त प्रचार-प्रसार एवं समुचित विकास के उपाय किये जाते रहे; किन्तु इस रूप में अधिकाधिक योगदान स्वयं कंपनी (ईस्ट इण्डिया कंपनी) के शिक्षा-विभाग से सम्बन्धित अधिकारियों का ही रहा है। स्वतन्त्र संस्कृत-अध्ययन, अध्यापन, ग्रन्थ-लेखन, साहित्य-निर्माण आदि की परम्परा निर्बाध रूप से प्रवर्तित रही हो इसमें कोई शङ्का नहीं, किन्तु जिन दशकों में मोडक ने संस्कृत-साहित्य की सेवा की है और उसकी श्री-वृद्धि में अविस्मरणीय योगदान दिया है वह काल इस प्रकार के किसी अन्य उदाहरण की प्रस्तुति में सर्वथा असमर्थ है। **'पण्डितराजान्तं कवित्वम्'** के रूप में जिस संस्कृत-कविताई और शास्त्र के विलुप्त होने की बात जनसाधारण में ऊह्य है निश्चय ही मोडक इस जन-भ्रान्ति को दूर करने में समर्थ हैं। पण्डितराज की तार्किकता, प्रखर साहित्य-विश्लेषण एवं सरस काव्य-प्रणयन आदि कई दृष्टियों से हम यह कहने को बाध्य हैं कि इन सभी क्षेत्रों में मोडक उनके लघु-संस्करण से प्रतीत होते हैं, हाँ केवल पण्डितराज का उद्धत पाण्डित्य मोडक के सन्दर्भ छोड़ना होगा। **'काव्यं मयात्र विहितं न परस्य किञ्चित्'** की प्रतिज्ञा तो मोडक नहीं करते, किन्तु *साहित्यसार* में इस नियम का यथाशक्ति पालन करते वे अवश्य पाए जाते हैं। जगन्नाथ के *भामिनीविलास* पर मोडक द्वारा की गई टीका में दोनों ही महाकवियों एवं काव्यशास्त्रियों के प्रातिभ-कवित्व एवं काव्य-विश्लेषण की सूक्ष्म दृष्टि का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। मोडक का रचना-संसार बहुत ही विशाल और व्यापक है। साहित्य-रचना में भी उन्होंने कई विधाओं पर अपनी सिद्ध लेखनी से चमत्कार उत्पन्न किए हैं। उनकी ग्रन्थ-सूची में अनेक ग्रन्थ दर्शन से सम्बन्धित हैं जो दर्शन-शास्त्रों पर उनकी अधिकारिता का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं; किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी मोडक को संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के इतिहास ने अब तक हाशिये पर ही रखा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहास ने तो उतनी भी उदारता नहीं बरती और जिस कवि पर उसे गर्व होना चाहिए उसे ही उसने आज तक भुलाए रखा है। मोडक से पाँच दशक पूर्व के आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय को जो महत्त्व तथा सम्मान संस्कृत काव्यशास्त्र तथा संस्कृत-साहित्य के इतिहास ने प्रदान किया है निश्चय ही मोडक उसी महत्त्व और उसी सम्मान के अधिकारी हैं।

आशा है संस्कृत-काव्यशास्त्र एवं साहित्य-इतिहास के विद्यार्थी मोडक को संस्कृत-समीक्षा, आलोचना, शोध-अनुसन्धान के साथ ही पठन-पाठन की मुख्य धारा में सम्मिलित करेंगे।

आचार्य मोडक का रचना-संसार बहुत ही व्यापक और विस्तृत है। इनकी रचनाओं में वेदान्तदर्शन-परक ग्रन्थों की संख्या अत्यधिक है। दार्शनिक ग्रन्थों से इतर मोडक ने कई काव्यग्रन्थों की भी रचना की, बल्कि कहना यह चाहिए कि साहित्य की दोनों ही शाखाओं; काव्यशास्त्र तथा काव्य, दोनों पर ही मोडक की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें कुछ प्रकाशित भी हैं। मोडक ने मूल ग्रन्थों के साथ-साथ कई प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थों पर टीका-ग्रन्थों का भी निर्माण किया है।

मोडक की कृतियों को जानने के तीन प्रमुख स्रोत हैं — मोरे हरि खरे की मराठी पुस्तक *मोडककुलवृत्तान्त, पृ.-206,* V. Raghavan द्वारा सम्पादित *Catalogus Catalogorum, Vol-1, pp. 74-76,* और रावजी गोंधलेकर द्वारा सम्पादित *पञ्चदशी* में बालकृष्णशर्मा उपासनी की प्रस्ताविका; किन्तु इन तीनों में ही अच्युतराव मोडक की कृतियों, उनके नाम और इनकी संख्याओं में बहुत अन्तर पाया जाता है। उपर्युक्त तीनों ही स्रोतों से सामान्य कोई पाठक मोडक की कृतियों के इदमित्थं रूप और संख्या से परिचित नहीं हो सकता। प्रत्येक स्रोत में कुछ न कुछ भ्रम की स्थिति है। यहाँ इन तीनों ही स्रोतों में चर्चित, यत्र-तत्र प्रकाशित तथा स्वयं हमारे पास संरक्षित मोडक-रचित ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों की सहायता से एक नवीन सूची प्रस्तुत की जाती है जिसके चार भाग हैं। इनमें आचार्य मोडक का समग्र कर्तृत्व सूचित है —

प्रामाणिक स्वतन्त्र ग्रन्थ

सं. ग्रन्थ-नाम	विषय/प्रकाशन/आवश्यक टिप्पणी
1. *अकल्पितचिदम्बरीस्तोत्र*	लक्ष्मी-स्तुति. *सा.सार* (पृ.-410) में उद्धृत
2. *अद्वैतजलजात*	र.काल 1797 ई., सम्भवतः प्रथम रचना जिसे अपने गुरुपुत्र पाण्डुरङ्ग के साथ बनाया। अद्वैतवेदान्त से सम्बन्धित।
3. *अद्वैतविद्याविनोद*	र.काल 1824 ई.
4. *अद्वैतसुधा*	*सा.सार* (पृ.-388) में उद्धृत.
5. *अद्वैताधिकरणचिन्तामणिमाला*	*जीवन्मुक्तिविवेक* की *पूर्णानन्देदुकौमुदी*-टीका में चर्चित. काण्डों/गुच्छों/अधिकरणों में विभक्त. हस्तलेख अनुपलब्ध.
6. *अद्वैतामृतमञ्जरी/अद्वैतमञ्जरी*	प्रकाश्य ग्रन्थ. *रतिमुकुल, नीतिमुकुल* एवं *रतिनीतिमुकुल* नामा तीन शतकों में पूर्ण.

7. अवैदिकमततिरस्कार/ अवैदिकधिक्कृति / शाक्तशासन	र.काल 1814 ई., शाक्तसम्प्रदायोक्त वामाचार निन्दा-परक ग्रन्थ. द्रष्टव्य *Bulletin of the Deccan College Research Institute, vol-18, pp. 215-220.*
8. ईशदेशिकविवेचनमञ्जरी	*NCC* के अनुसार र.काल 1835 ई., विषय अज्ञात.
9. कृष्णलीलामृतकाव्य	6 सर्गों में. मोडक ने इस पर *व्यङ्ग्यार्थरत्नचषक*'-टीका भी लिखी है. सटीक प्रथम-सर्ग गणपतकृष्णाजी प्रेस बम्बई से 1872 ई. में प्रकाशित. हस्तलेख आनन्दाश्रम पूना में.
10. गीतसीतापति	रामकथा-परक गीतिकाव्य. 3 सर्ग में. हस्तलेख आनन्दाश्रम, पूना में. प्रस्तुत सम्पादकों द्वारा शीघ्र सम्पाद्य एवं प्रकाश्य.
11. गोदालहरी	स्तोत्र. *NCC* के अनुसार मोडक की टीका के साथ गणपत-कृष्णजी प्रेस, मुम्बई से 1869 में प्रकाशित. प्रतियाँ दुर्लभ.
12. दुःखक्षयेन्दूदय	राधाकृष्ण प्रेम-परक लघु काव्य. र.काल-1816 ई.
13. द्वितयव्यक्तिक्षय	अद्वैतदर्शन सम्बद्ध. *पञ्चदशी* की टीका *पूर्णानन्देन्दुकौमुदी* (पृ.-47) पर उद्धृत.
14. दृश्यविषयताखण्डन	दर्शन से सम्बन्धित. हस्तलेख *O.I. Baroda* में.
15. निरञ्जनमञ्जरी	शान्तरस-प्रधान काव्य. सा.सार में उद्धृत. अप्रकाशित.
16. नीतिशतपत्र	नामान्तर *अच्युतशतक*. मुम्बई से 1869 में प्रकाशित.
17. प्रारब्धध्वान्तसंहृति	र.काल-1819 ई. विषय - दर्शन. अप्रकाशित.
18. प्रियव्रतचरितचन्द्रिका	सा.सार में उद्धृत. विषय - अज्ञात, सम्भवतः काव्य.
19. बोधैक्यसिद्धि	र.काल-1834 ई., *अद्वैतात्मबोध*-टीका सहित. पूर्व एवं उत्तरार्द्ध के रूप में विभक्त. पूर्वार्द्ध आनन्दाश्रम, पूना से प्रकाशित.
20. भागीरथीचम्पू	नामान्तर - *भागीरथीचम्पूकथाप्रबन्ध*. ग्रन्थान्त की पुष्पिका के अनुसार र.काल-1814 ई., 'ग्रन्थरत्न माला, सं.-2 एवं 3 में 1888-1889 ई. में प्रकाशित।
21. महावाक्यार्थमञ्जरी	र.काल-1825 ई. उपनिषदों के महावाक्यों पर. अप्रकाशित.

22. *मुक्तिरमालङ्क्रिया*	विद्यारण्यमुनि की *पञ्चदशी* पर स्वकृत *पूर्णानन्देन्दुकौमुदी* टीका (पृ.-72) एवं स्वकृत *बोधैक्यसिद्धि* की टीका (पृ.-16) पर उद्धृत.
23. *विष्णुपदलक्षण*	*NCC* के अनुसार इसमें *'विष्णुपदे श्लोकपञ्चविंशतिः'* भी संलग्न है.
24. *विशुद्धमाधवम्*	*सा.सार* (पृ.-388) में उद्धृत मोडक का सम्भावित एकमात्र रूपक. अनुपलब्ध.
25. *वेदान्तामृतचिद्रत्नचषक*	इसमें दो अंश हैं - गोपालेन्द्र सरस्वती द्वारा संगृहीत महावाक्य और इन महावाक्यों पर व्याख्या सहित मोडक 354 कारिकाएँ. इसका नाम रखा *चिद्रत्नचषक.*
26. *सरस्वतीशृङ्गार*	विद्यारण्यमुनि के *जीवन्मुक्तिविवेक* की मोडक-कृत टीका *पूर्णानन्देन्दुकौमुदी* (पृ.-341) पर उद्धृत. अनुपलब्ध.
27. *साहित्यसार*	काव्यशास्त्र पर प्रौढ़ ग्रन्थ. 12 रत्नों में विभाजित.
28. *सौभाग्यकल्पद्रुम*	धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ. स्त्रीधर्म पर 80 कारिका. महाभारत आदि में वर्णित स्त्रीधर्म सिद्धान्तों, शिक्षाओं पर पृथग् विचार.
29. *श्रीभालचन्द्रचम्पू*	गणेश विषयक रचना. 5 स्तबकों जिन्हें मन्दार कहा गया है; 80 पद्य एवं 22 गद्य खण्डों में पूर्ण.
30. *हेरम्बचरणामृतलहरी*	र.काल 1820 ई. नामान्तर - *गणेशलहरी.* 121 पद्यों में पूर्ण. हस्तलेख 'भारत-इतिहास-संशोधन मण्डल, पूना में.

प्रामाणिक टीका ग्रन्थ

1. *अद्वैतराज्यलक्ष्मी*	माधवाचार्य की *शङ्करदिग्विजय* पर टीका. र.काल 1824 ई.
2. *अद्वैतरत्नरक्षण*	विद्यारण्यमुनि की *पञ्चदशी* पर अपनी टीका *पूर्णानन्देन्दु-कौमुदी* (पृ.-72) एवं स्वकृत *बोधैक्यसिद्धि* की टीका *अद्वैतात्मप्रबोध* (पृ.-16) पर उद्धृत.
3. *अद्वैतात्मप्रबोध*	स्वकृत *बोधैक्यसिद्धि* पर.
4. *अद्वैताभिव्यक्ति*	सम्भवतः स्वकृत *द्वितयव्यक्तिक्षय* पर. *पञ्चदशी* की टीका *पूर्णानन्देन्दुकौमुदी* (पृ.-47) पर उद्धृत.
5. *आमोद*	स्वकृत *वेदान्तामृतचिद्रत्नचषक* पर. आनन्दाश्रम से प्रकाशित.

6. प्रकाश	स्वकृत *अद्वैताधिकरणचिन्तामणिमाला* पर.
7. प्रकाश	स्वकृत *गोदालहरी* पर. बम्बई से 1869 ई. में प्रकाशित.
8. प्रणयप्रकाश	*भामिनीविलास* पर. निर्णयसागर से प्रकाशित।
9. पूर्णानन्देन्दुकौमुदी	विद्यारण्य मुनि के *जीवन्मुक्तिविवेक* पर.
10. पूर्णानन्देन्दुकौमुदी	विद्यारण्य मुनि की *पञ्चदशी* पर. पूना से 1895 ई. में प्रकाशित.
11. रामगीतार्थचन्द्रिका	*अध्यात्मरामायण* की *रामगीता* पर. हस्तलेख BORI में.
12. व्यङ्ग्यार्थरत्नचषक	स्वकृत *कृष्णलीलामृतम्* पर.
13. व्यङ्ग्यार्धनारीश्वर	गोवर्धनाचार्य की *आर्यासप्तशती* पर. र.काल 1822 ई.
14. शारदागम	*अमरुशतकम्* पर. नामान्तर - अर्थद्वयबोधिनी. र.काल 1835 ई. अन्तिम रचना.
15. शुद्धधर्मपद्धति	शङ्कराचार्य के *सदाचार* पर. र.काल 1817 ई.
16. सदाशिवार्याव्याख्या	अप्पय दीक्षित (तृतीय) के *शिवार्याशतकम्* पर.
17. सरसामोद	स्वकृत *साहित्यसारम्* पर.
18. सौन्दर्यलहरी-व्याख्या	पण्डितराज के प्रख्यात लहरी-काव्य पर टीका।

सम्भावित स्वतन्त्र ग्रन्थ

1. अवयवोक्तिप्रत्युक्तिमञ्जरी	*मोकुवृ. (पृ.-206)* एवं *पञ्चदशी (पृ.-4)*. अज्ञात. अनुपलब्ध.
2. ईशकेनादिपादान्तस्तुति	उपरिवत्
3. कारुण्यलहरी	उपरिवत्
4. कृष्णशतक	उपरिवत्
5. चिच्चिन्तामणिचिन्तन	उपरिवत्
6. जगद्विजय	उपरिवत्
7. भूभृदुद्वाह	उपरिवत्
8. मणिमयादर्श	उपरिवत्
9. मृत्युञ्जयचम्पू	उपरिवत्
10. भागवतचम्पू	उपरिवत्

11. रेवापीयूषलहरी उपरिवत्

12. संयमसत्कृती उपरिवत्

13. सिद्धान्तरत्नसिद्धान्त उपरिवत्

14. सोपानपञ्चकव्याख्या उपरिवत्

15. स्मरहरविहारभाण उपरिवत्

16. शिवस्तुतिमुक्ताभरण उपरिवत्

17. शिवस्तवनमञ्जरी उपरिवत्

18. हरिभक्तिरसामृतसिन्धुसार उपरिवत्

19. हिरण्यकेशियाह्निक उपरिवत्

सम्भावित टीका ग्रन्थ

1. अमरकोश-टीका *मोकुवृ. (पृ.-206)* के अनुसार प्रथम काण्ड पर.

2. शृङ्गारकलिकाटीका *मोकुवृ. (पृ.-206)*. एवं पञ्चदशी (पृ.-4) अज्ञात. अनुपलब्ध.

3. स्वप्नमन्त्रत्रयीव्याख्या उपरिवत्.

इस प्रकार उपर्युक्त सूची को देखकर मोडक की विलक्षण विद्वत्ता, उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य आदि का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

अस्तु, *अ.मञ्जरी* का संशोधित और सम्पादित पाठ विद्वानों के हाथ समर्पित है। हमारी अशुद्धियों पर 'परामर्श' भविष्यत्कालीन ऐसे सारस्वत कर्मों में सदा रह जाने वाले हमारे प्रमाद को दूर करेगा अतः ऐसे शुभ परामर्शों की हम सदा प्रतीक्षा करते रहेंगे।

अन्त में इस ग्रन्थ के सम्पादन हेतु अपने संग्रहालयों में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थों की छायाप्रति देने वाली संस्थाओं, यथा - 'ओरियंटल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, 'आनन्दाश्रम पूना तथा 'अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान वाराणसी, का हम हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। श्रद्धेय अग्रज प्रवीण कुमार मिश्र का विशेष आभार जिन्होंने अपने अधूरे सम्पादित पाठ को पूर्ण करने का सुअवसर दिया।

अ.मञ्जरी की प्रेस-कॉपी तैयार होने तक हम *नीतिमुकुल* के तीन पद्य का शुद्ध पाठ तैयार नहीं कर पाए थे। कारण था इन तीनों ही पद्यों में एक या दो पद का अशुद्ध या भ्रामक रूप में लिखा जाना। इस बीच 'अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन' के 50 वें

अधिवेशन में सम्मिलित होने हम सम्पादक व अनुवादक नागपुर गए और 'पाण्डुलिपि-विज्ञान' एवं 'क्लासिकल् संस्कृत' के सत्रों में *अ.मञ्जरी* से सम्बन्धित तीन शोधपत्र प्रस्तुत किया। विद्वानों से मार्गदर्शन की अपेक्षा से हम इसकी प्रेस-कॉपी भी साथ लेते गए थे। संयोग से इस अधिवेशन में संस्कृत और पाण्डुलिपि-विज्ञान की अधिकारिणी विदुषी प्रो. रत्ना वसु (संस्कृत-विभाग, कलकाता विश्वविद्यालय) से हमारी मुलाक़ात हुई और हमने निम्नलिखित तीन पद्यों को उन्हें दिखाया और इनमें अपाठ्य पदों की गुत्थी सुलझाने की उनसे प्रार्थना की। नीचे अपाठ्य पदों को ***बोल्ड*** के रूप में दर्शाया गया है -

1. बलि**संस्यद्धर** किञ्चित् कालं....।। (नीतिमुकुल, पद्य-38)
2. यदि न ग्रहपरवशनरगिरा.... नहीति **किमान**।। (नीतिमुकुल, पद्य-58)
3. बत लीलयापि नेह.... **बुद्धयश्यंत्यपि** प्रौढाः।। (नीतिमुकुल, पद्य-74)

विदुषी प्रोफ़ेसर् ने उपर्युक्त पद्यों को निम्नवत् पढ कर इन्हें संशोधित किया -

1. बलि**संस्पर्द्धः** किञ्चित् कालं....
2. यदि न ग्रहपरवशनरगिरा .... नहीति **कियान्**।।
3. बत लीलयापि नेह ... **बुद्धं पश्यन्त्यपि** प्रौढाः।।

इनमें संख्या 1 और 3 तो अपने मूल पाठ के अर्थानुरूप शुद्ध हो गए, किन्तु संख्या-2 पर आए हुए 'यदि न ग्रहपरवश'... पद्य में **किमान** को **कियान्** के रूप में शुद्ध कर लिए जाने के बावजूद यह पद्य अर्थ के अनुरूप न तो स्पष्ट हो पाया न ही शुद्ध।

अस्तु, प्रो. रत्ना बसु को हृदय से आभार कि उन्होंने अधिवेशन की आपा-धापी में भी अपना अमूल्य समय देकर हमारा सहयोग किया।

विनीत

विमलेन्दु कुमार त्रिपाठी (देवघर)

राइचरण कामल (मेदिनीपुर)

कुछ अनुवादक की ...

ई. सन् 2004 में हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह के दौरान तीन पाण्डुलिपियाँ मुझे वाराणसी और लखनऊ से प्राप्त हुई थीं। 'आर्याशतकम्' *(रतिमुकुल)* तथा 'शृङ्गारशतकम्' *(रतिनीतिमुकुल)* की पाण्डुलिपियाँ स्वर्गीय कान्तानाथ पाण्डेय (चोंच बनारसी) के घर से और 'नीतिशतपत्रम्' की पाण्डुलिपि नक़्ख़ास, लखनऊ के एक उर्दू-पुस्तक संग्राहक की दुकान से। इन पाण्डुलिपियों के अध्ययन के बाद 'आर्याशतकम्' पर एक शोध-आलेख इन पंक्तियों के लेखक ने *All India Orietnal Conference (43rd Session, 2006 A.D., University of Jammu)* के *Manuscript Section* में प्रस्तुत किया था। उपस्थित विद्वन्मण्डली ने नव-गवेषित पाण्डुलिपि और इसके वर्ण्य-विषय की प्रशंसा की और सत्र के अध्यक्ष प्रो. ब्रजबिहारी चौबे ने इसे सम्पादित करने सलाह दी थी।

दूसरे हस्तलेख 'शृङ्गारशतकम्' को, एक शोध-आलेख; जो कि *नागरीप्रचारिणी पत्रिका* (नागरीप्रचारिणी सभा, काशी) में प्रकाशित हुआ था, -के माध्यम से मेरे अनुज डॉ. प्रवीण कुमार मिश्र ने संस्कृत-समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। इसके बाद इन तीनों ही शतकों और इनकी हस्तलिखित प्रतियों को हम कुछ शोधलेखों के माध्यम से विद्वत्समाज और संस्कृत-अनुसन्धान की वर्तमान धारा के समक्ष प्रस्तुत करते रहे; किन्तु इसे सम्पादित कर प्रकाशित करने की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। कारण था 'संस्कृत-साहित्य को मुस्लिमों का योगदान' शीर्षक इस संस्थान की परियोजना के कारण समय का अभाव।

समय बीतता गया और यह तीनों शतक अपने प्रकाशन की प्रतीक्षा में हमारे पास सुरक्षित पड़े रहे। इसी बीच 'विमलेन्दु' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पी-एच्. डी. शोध-च्छात्र के रूप में नामित हुए और मेरे आग्रह पर मोडक के प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ *साहित्यसार* पर शोधप्रबन्ध समर्पित किया। शोधकार्य के दौरान ही विमलेन्दु का ध्यान मोडक के इन शतकों पर गया और इन्हें सम्पादित करने की इच्छा उसने प्रकट की। शोधकार्य से निवृत्त होने के कुछेक वर्ष बाद ही वह इस पर लग गए और तीनों ही

शतक के हमारे आधे-अधूरे सम्पादित पाठ को पूरा कर लिया। अब जबकि सम्पादित पाठ को हम प्रकाशित करते; इन्होंने अजीबो-ग़रीब ज़िद पकड़ी कि - 'इन शतकों का आप हिन्दी-अनुवाद कर दीजिए और अनुवाद के साथ इसे प्रकाशित कीजिए।' मैंने कई बार और कितने ही प्रकार से इसके लिए उन्हें रोका; किन्तु ये ठहरे बचपन के ज़िद्दी। इस हठ के कारण दो वर्ष तक सम्पादित पाठ प्रकाशित न हो सका।

इन शतकों का अनुवाद मैं कई कारणों से नहीं करना चाहता था। सबसे बड़ा कारण वही था जो प्रायः अनुवादकों के समक्ष होता है। जी हाँ; मूल काव्य की आत्मा को भाषान्तर में अभिव्यक्त करने सम्बन्धी अपनी क्षमता पर सन्देह। किन्तु;... किन्तु होनी प्रबल होती है। विमलेन्दु के हठ से बलात् प्रेरित मैंने इसका अनुवाद पूर्ण किया। करने को तो कर दिया; लेकिन एक विकट समस्या और आ खड़ी हुई। अनुवाद हेतु प्रयुक्त मेरी भाषा-शैली विमलेन्दु को पसन्द न आयी। अब क्या हो? अनुवाद-भाषा हेतु शुद्ध तत्सम हिन्दी और काव्यों के अनुवाद हेतु अन्वय-सम्बद्ध नीरस शैली मुझे कभी नहीं सुहाती। फिर झगड़ा शुरू हुआ। फिर वही हठ। फिर मुझे हारना पड़ा और उर्दू की जिस तर्ज़-बयानी तथा हिन्दी के जिन तद्भव एवं देशज शब्दों के सहारों पर मेरा अनुवाद टिका था, संस्कृत के तत्सम शब्दों ने उन्हें तिनकों की तरह ढहा दिया। अनुवाद हेतु प्रयुक्त 'संवाद-शैली' के सन्दर्भ में मैं जीत सका और उसे उसी तरह रहने दिया गया है। बात यह है कि मोडक ने शृङ्गार के सतरंगी परिधान में अद्वैतवेदान्त की जिस शिक्षा-वधूटी को प्रस्तुत किया है उसके हाव, भाव, हेला, विलास, विव्वोक और उसके सरस रस का आस्वाद इसी संवाद-शैली में उतारा जा सकता था।

अस्तु; अनुवाद के साथ यह पुस्तक 'अच्युतशतकत्रयी' के नाम से अब प्रेस को जाने वाली ही थी कि सौभाग्य से; बल्कि कहना चाहिए कि संस्कृत-साहित्य के प्रबल सौभाग्य से राइचरण मेरे सम्पर्क में आए। संस्कृत-विभाग, कला-संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोधच्छात्र हैं। संस्कृत-भाषा और साहित्य पर बड़ी गम्भीर आस्था है। सबसे बड़ी बात कि अनुसन्धान हेतु आवश्यक धैर्य, दृष्टि और स्थिरता आपमें बड़ी अच्छी दीख पड़ती है।

ख़ैर; राइचरण अच्युतराव मोडक की ही एक रचना 'भालचन्द्रचम्पू' पर शोधकार्य कर रहे थे। इसी सिलसिले में मुलाक़ात हुई थी। मैंने प्रकाश्य 'अच्युतशतकत्रयी' से उनका परिचय करा दिया था और *अ.मञ्जरी* की दुर्लभता का हवाला देते हुए इस ग्रन्थ पर भी सतर्क रहने की सलाह उन्हें दी। मोडक पर सामग्री एकत्रित करने जब राइचरण

नासिक की यात्रा पर थे; मेरे अनुग्रह पर उन्होंने नासिक, त्र्यम्बकेश्वर, पञ्चवटी और पूना के प्रायः पुस्तकालयों में मोडक की कृतियों को ढूँढने का अथक परिश्रम किया। उनकी इस यात्रा और परिश्रम से मोडक के सन्दर्भ की अब तक अप्राप्त कई सामग्री और स्वयं मोडक की कुछ अज्ञात कृतियाँ भी प्राप्त हुईं। सामग्री ढूँढने का यह क्रम चलता ही रहा। एक दिन की बात है कि अचानक राइचरण बड़ौदा से प्राप्त एक हस्तलिखित ग्रन्थ की छायाप्रति के साथ घर उपस्थित हुए। इस हस्तलिखित ग्रन्थ को देखते ही मेरी ख़ुशी का जो आलम था उसे मैं ख़ुद बयाँ नहीं कर सकता। पिछले दशाधिक वर्षों से जिस एक कृति की अनुपलब्धता के कारण मैं और बिट्टू; दोनों ही *अ.मञ्जरी* का स्वरूप नहीं समझ पाते, इसे अनुपलब्ध या विलुप्त समझते रहे; पलक झपकते यह सब द्वन्द्व दूर हो गया।

दर-अस्ल, यह हस्तलिखित प्रति *अ.मञ्जरी* में समाहित *नीतिमुकुल* की थी। इससे पूर्व हमारे पास दो मुकुल उपलब्ध थे - *रतिमुकुल* एवं *रतिनीतिमुकुल*। *नीतिमुकुल* के उपलब्ध न होने के कारण ही हम इन दो तथा *नीतिशतपत्र* को मिला कर 'अच्युतशतकत्रयी' के नाम से इन्हें प्रकाशित करने जा रहे थे। अब जो यह तीसरा मुकुल उपलब्ध हो गया तो *अ.मञ्जरी* अपने पूर्ण रूप में हमारे सामने आ गई। शतकत्रयी के प्रकाशन की योजना स्थगित हुई और *अ.मञ्जरी* पर कार्य प्रारम्भ हुआ। बड़ौदा से प्राप्त पिछले दो मुकुलों का पाठान्तर और ख़ास कर *नीतिमुकुल* को सम्पादित करने का भार राइचरण पर आया जिसे उन्होंने बड़े परिश्रम से पूरा किया।

लेकिन मेरे सिर पर जो नया भार आया उसे मैं किसी और पर कैसे स्थानान्तरित करता? चारो नाचार *नीतिमुकुल* का भी हिन्दी रूपान्तर करना पड़ा। कर दिया।

यहाँ एक बात के लिए मैं अपने पढने वालों और अनुवाद-सिद्धान्त के आचार्यों से क्षमाप्रार्थी हूँ। अनुवाद के बीच-बीच में; मेरे काव्य और कवि-हृदय की उच्छृङ्खलता के कारण कुछ अनुवाद 'मुक्त-छन्द' में प्रस्तुत हो गए हैं। तो पढने वाले इसलिए क्षमा करें कि यदि उन्हें यह पद्यानुवाद पसन्द आ जाए तो सभी पद्यों का उसी रूप में अनुवाद उन्हें नहीं मिलेगा। अनुवाद-सिद्धान्त के आचार्य इसलिए क्षमा करें कि मर्यादा के विपरीत एक ही अनुवाद में यहाँ गद्य और पद्य; दोनों विधा का उपयोग किया गया है।

एक अनुरोध और। मोडक की भाषा और इस भाषा में सम्प्रेषित उनके भाव या वर्ण्य-विषय यद्यपि कि उतने दुर्बोध नहीं, लेकिन भाषान्तर में इसे सम्प्रेषित करते समय उनके उपमेय-उपमान, प्रकृत-अप्रकृत, बिम्ब, प्रतीक और कथ्य इधर के उधर और उधर के इधर हो जाते हैं। इसलिए यदि कहीं अनुवाद; मूल से हटा प्रतीत हो, कृपा कर

सन्मार्ग (संस्कृत की राह) पर लाकर ही पढिएगा और हो सके तो इस 'उत्तमसाहसी' को भी सूचित करिएगा कि उसे भूल सुधारने का अवसर सुलभ होगा।

अस्तु, जिस भी रूप में बन पड़ा यह अनुवाद और इन शतकों का सम्पादित पाठ आपके हाथ में है। *अ.मञ्जरी* और *नीतिशतपत्र* की पाण्डुलिपियों, इनके रचयिता और... और बहुत सारी इधर-उधर की बातें भूमिका में कही जा चुकी हैं। इसलिए यहाँ उन्हीं बातों को फिर क्या दुहराना। कुछ अचर्चित की चर्वणा निम्नवत् है —

1. मुकरियों का प्रचलन हज़रत अमीर ख़ुसरो से पहले हुआ होगा निश्चित है। मध्य काल के संस्कृत-साहित्य में भी मुकरियों जैसी रचनाएँ अवश्य लिखी गई होंगी। देखने में कम आती हैं। मोडक की कुछ मुकरियों का आनन्द लीजिए —

उपलभ्य रहसि रसतः स्वकीयदोषं व्यनक्ति सौभाग्यम्।
किमियं वधूशिरोधिर्नहि नहि धौरेयधीरेव।।

रतिनीतिमुकुल-43.

सम्पूर्णामृतवपुषा कलावता द्विजवरेण शुचिभासा।
रमते श्यामा किमियं नहि नहि निजपद्मिनी कापि।।

रतिमुकुल-95.

2. कवि-समवाय के प्रसिद्ध बिम्ब, प्रतीक और दृष्टान्तों से इतर मोडक ने समसामयिक और जीवन तथा घरेलू वातावरणों से भी बिम्ब, प्रतीक आदि ग्रहण किए हैं जो कवि की लोक और गार्हस्थ्य दृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। असम्भव कार्य की सम्भाव्यता पर पारम्परिक कवि-समवाय में असंख्य प्रतीक उपलब्ध थे, किन्तु 'लहसुन' जैसी घरेलू चीज़ को उदाहरण में रखकर कथ्य को क्या ही दमदार बना दिया है —

न यत्नकोटिशतकैरपि दुष्टः सुधीर्भवेत्।
किम्मर्दितोऽपि कस्तूर्या लशुनो याति सौरभम्।।

नीतिशतपत्र-27

उत्ताल तरङ्गों से लहराती, बलखाती युवतियों को 'कुमारी' कहना लोकप्रचलित है, किन्तु इसके व्युत्पत्ति-परक अर्थ के सापेक्ष कुवर्ण को सुवर्ण कहने के विरोधी मोडक क्या ग़ज़ब का तर्क गढते हैं —

यत् कुवर्णकहेतुस्तत् सुवर्णं कथमुच्यताम्।
नोचेत् कुमार्यपि जनैः सुमारीत्येव भाष्यताम्।।

नीतिशतपत्र-36

'आलोचना' की कई व्याख्याएँ या परिभाषाएँ आपने पढी होंगी एक परिभाषा मोडक की पढिए —

आलोचयद्भिरखिलैः श्रयणीयः साधुपक्ष एव मुदे।
नहि सुन्दरीदृगन्तः श्रयते कुटिलां भ्रुवं श्रुतिं हित्वा।।

रतिनीतिमुकुल-7

3. भारत में पतंगबाज़ी की शुरूआत कब हुई यह तो हमें निश्चित तौर पर नहीं मालूम मगर मोडक के निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है कि ई. सन् 1839 में पतंग इस देश में बहुतायत उड़ाए जाते रहे होंगे। उस काल में भी इन्हें 'पतंग' ही कहा जाता था -

अवलम्बितविष्णुपदः कर्षितजनचक्षुरतुलदीर्घमूर्ध्वपादगतिः।
पत्रमयोऽपि पदार्थः पतङ्गतामेति गुणयोगात्।।

नीतिमुकुल-4

4. नासिक मोडक की कर्मभूमि रही है। इस शहर से उन्हें बड़ा लगाव रहा है। उनका यह लगाव कुछ आर्याओं में प्रकट भी हुआ है; किन्तु अपने अन्तिम दिनों में सम्भवतः मोडक को इस महान् नगर में व्याप्त हो रही अपसंस्कृति को भी देखना पड़ा है। 1839 ई. के आस-पास नासिक की दुर्दशा का वर्णन वह बड़े भावुक शब्दों में करते हैं —

सौरभ्यग्राहकतात्रास्तीत्याराददिहागता मुक्ताः।
गुणरोधोऽधरसङ्गः पृथ्व्या अपि नासिकाभिधाङ्गेऽभूत्।।

रतिनीतिमुकुल-23

5. मोडक के व्यक्तिगत जीवन पर प्राप्त सामग्री से ज्ञात है कि आप संन्यास प्राप्त एक अलौकिक साधक, योगी, वीतराग, दार्शनिक और विषय-वासनाओं से परे व्यक्ति थे। किन्तु स्त्री-पुरुष-सहवास, मैथुन, मैथुन-जन्य क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, अनुभूतियों पर जो आपका साधिकार लेखन है या फिर स्त्री-देह, अङ्ग-संस्थान, अङ्गों की

सांस्थानिक बनावट, उनके नपे-तुले आकार-प्रकार, इनकी तज्जन्य चेष्टाएँ, मुद्राएँ, भाव-भङ्गिमाएँ, इन्हें प्रकट करने के मनोवैज्ञानिक कारण, देश, काल, स्थान आदि पर आपकी सूक्ष्म दृष्टि पाठकों को आश्चर्य में तो डाल ही देगी; मैं बहुत ग़लत न हूँगा यदि पाठकों का एक वर्ग आपको 'कामुक' होने का अनुमान कर ले।

अस्तु, अन्त में सम्पादन एवं अनुवाद-यज्ञ के कुछ ऋत्विजों का आभार प्रकट करना चाहता हूँ। प्रथम तो प्रवीण कुमार मिश्र (बिट्टू) का। इस सम्पादित संस्करण का एक अमूर्त और अपूर्ण रूप बिट्टू वर्षों पहले दे चुके थे। उन दिनों अन्यान्य शोधकार्यों और उसके बाद अपने सेवाकार्य में व्यस्तता के कारण यद्यपि वह इसे सम्पादित व प्रकाशित न कर सके; किन्तु उनके प्रारम्भिक कार्यों ने ही आज मूर्त रूप धारण किया और यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है।

संस्थान के सदस्यों का, कि समय-समय पर और आवश्यकता के अनुरूप सहायता द्वारा हमारा मनोबल बनाए रखते हैं।

प्रदीप कुमार मिश्र (वाराणसी) को; कि कुछ पद्यों के अनुवाद में आपकी सूझ-बूझ और अर्थ-परक दूरदृष्टि बड़े काम आई।

विनीत

प्रताप कुमार मिश्र

काशी, मकरसंक्रान्ति, वि. सं. २०७६

रतिमुकुलः

रतिमुकुल (वाराणसी)

रतिनीतिमुकुल (वाराणसी)

नीतिशतपत्र (वाराणसी)

रतिमुकुल (बड़ौदा)

नीतिमुकुल (बड़ौदा)

रतिनीतिमुकुल (बड़ोदा)

॥ श्री ॥

सस्कृत नीतिशतपत्र.

हा ग्रंथ

अच्युतराव मोडक

यांणीं केला,

तो

गोविंदात्मज बाळशास्त्री मोडक

यांणीं

प्रसिद्ध होण्यासाठीं

उदार लोकांचे साहाय्यानें छापवून परमादरानें
साहाय्य करणारांस नजर केला असे.

मुंबईंत.

गणपत कृष्णाजी यांचे छापखान्यांत मालकांचे
हुकमावरून नारोकृष्ण डुमाळे यांणीं छापिला.

चैत्रमास शके शालिवाहन १७९१

इसवी सन १८६९

किंमत चार आणे.

हा ग्रंथ सन १८६७ चा आक्ट २० प्रमाणें रजिस्टर केला आहे.

नीतिशतपत्र (मुम्बई)

सुर्नीतिशतपत्रस्ये त्यच्युतेनकृतस्ययः॥
सौरभ्यतःस्यादामोदी राजहंसोभवेदसौ ॥

॥ १०१ ॥

श्रीनारायणगुर्वंघ्रि शतपत्रेसमर्पितं॥
ननीतिशतपत्रंकिं भूयात्पट्पदतुष्टये॥

॥ १०२ ॥

पांडुरंगाख्यहंसस्य गुरुपादाब्जशायिनः॥
सौरभ्यायास्तुसततं तन्नीतिशतपत्रकं॥

॥ १०३ ॥

इत्यच्युतविरचितंनीतिशतपत्रंसमाप्तम्॥

नीतिशतपत्र (मुम्बई)

अच्युतरावमोडकविरचितायाम् अद्वैतामृतमञ्जर्यां

रतिमुकुलः

श्रीशं वन्दे

१

स्फुरणेनेष्टवियोगं कथयिष्यत इति भियेवापसव्यान्ये।
त्यक्ते याभ्यां स्वतनू तावाद्यौ दम्पती नुमोऽभिन्नौ।।

'स्फुरण मात्र से ही इष्ट-वियोग सम्भावित है' - इस भय से ही मानों अपने बाँयें तथा दाहिने शरीर का जिन्होंने त्याग कर दिया और इस रूप में सदा ही सम्पृक्त रहा करते हैं, संसार के उस आदि दम्पति भगवान् श्री शङ्कर एवं पार्वती को प्रणाम है ।

२

भो भो प्रेयस्तावकमाप्य प्रतिबिम्बमेव किमयं मे।
सुधियोऽप्यहो कपोलो भवति रसात्मा श्रुतेः सङ्गात्।।

ओ प्रिय! क्या तुम्हारे प्रतिविम्ब को पाकर ही मेरे यह कपोल रस से अनुरक्त हो रहे हैं?.... तुम्हारा प्रतिबिम्ब ही रागात्मक नहीं, तुम्हारी बातें भी अनुराग उत्पन्न करती हैं! निश्चय ही कानों के समीप होने के कारण मुझ तत्त्ववित् का कपोल भी रसात्मा होकर; अनुरक्त हो रहे हैं।

३

प्रत्यङ्मुखोऽपि रक्तः पूर्णोऽप्युदयन् कुमुद्वतीः स्पृशति।
द्विजराजोऽपि त्यक्त्वा किमित्ययं तारकाः स्वीयाः।।

विपरीत दिशा की ओर मुख किए भी अनुरक्त, अपनी समूची कलाओं से परिपूर्ण, उदित होता यह चन्द्रमा (द्विजश्रेष्ठ) अपनी प्रेयसी तारों (ध्यानावस्था); जो कि उसकी स्वकीया-नायिकाएँ हैं, -को छोड़ परकीया कुमुद्वती का स्पर्श कर रहा है!

४

भान्त्येव मौक्तिकानि प्रत्यङ्गं परिविभूषयन्तीयम्।
अभिसरति चन्द्रवदना सन्ध्यावसना निशाकाशम्।।

देखो इस अद्भुत दृश्य को कि नक्षत्र-रूपी मोतियों से समूचे शरीर को सुसज्जित कर, सर्वाङ्ग अलङ्कृत यह चन्द्रमा-रूपी मुख वाली और सन्ध्या-रूपी वस्त्रों को धारण करने वाली निशा-नायिका आकाश-रूपी नायक के साथ अभिसार हेतु निकल पड़ी है।

५

आदाय गोसहस्रं गते त्रयीवपुषि पद्मिन्यः।
राज्ञस्तुच्छा अभवंस्ता अप्यासन्समाहिताः किमिमाः।।

अपने समस्त किरणों के साथ सूर्य के अस्ताचल को चले जाने पर पद्मिनियाँ भी अपने रूप और कान्ति को छोड़ निस्तेज और निःसार हो गईं। तो क्या ये पद्मिनियाँ भी सूर्य में समाहित-चित्त वाली थीं?

जी हाँ पतिव्रता स्त्रियों की यह रीति है कि पति की समृद्धि और ह्रास में ही उनकी भी समृद्धि और ह्रास परिलक्षित हो जाते हैं।

६

अमृतद्युतिवदनेयं श्यामा पुरुषायितं चरति।
व्याकीर्णतिमिरचिकुरच्युता यतस्तारकामुक्ताः।।

अमृत के समान कान्ति से युक्त, चन्द्रमा-रूपी मुख वाली यह रात्रि-नायिका निश्चय ही प्रातः होते-होते पुरुष के समान आचरण करने लगी है; अर्थात् विपरीत-रति में प्रसक्त हो उठी है। विपरीत-रति में प्रसक्ति के कारण ही इसके अस्त-व्यस्त तथा बिखरे केश-पाश से वे तारे-रूपी मोती इधर-उधर बिखर पड़े हैं जिन तारों से इसने अपने केश-पाश को सुसज्जित किया था।

७

उदिते सत्यमृतात्मनि दोषोऽप्येषोऽगमद्गुणत्वं यत्।
भासाऽऽजीवं जीवाश्चुम्बनदानेन तोष्यन्ते।।

अमृतात्मा चन्द्रमा के उदय पर यह दोष भी गुण के रूप में परिवर्तित हो उठा कि इसकी कान्ति के सुकुमार स्पर्श (प्रेमिकाएँ अपने-अपने अमृतात्मा प्रेमियों के चुम्बन) द्वारा प्राणी सन्तुष्ट किए जाते हैं। अन्यथा चुम्बन एक दोष ही तो है।

८

मानवतीमेवायं कुमुद्वतीं निजकरैः परामृशति।
पूर्णकलानिधिरेषा त्वान्तरतम एव मधुपमुद्गिरति।।

चन्द्रमा अपने हाथों से मानिनी कुमुद्वती का ही स्पर्श करता है अर्थात् कुमुद्वती से ही प्रणय-भाव स्थापित करता है, क्योंकि पूर्ण कलाओं की निधि कुमुद्वती अपने अन्तःस्थल से मान-रूपी अन्धकार के समान भौंरों को बाहर छोड़ती रहती है।

९

सुदृशां वदनाभासाऽऽसादितशान्त्या तमश्छिदा सद्यः।
जित इति कलङ्कितोऽभूदयं कलावान् बताद्य पूर्णोऽपि।।

पूर्ण कलाओं से युक्त यह चन्द्रमा; निश्चय ही आज बड़ी-बड़ी और सुन्दर आँखों वाली नायिकाओं की स्निग्ध, शान्त और अन्धेरे को पार कर जाने वाली मुख-कान्ति द्वारा पूर्णतः जीत लिया गया है।

अहह!... इसलिए तो उसमें यह कलङ्क दिखलाई पड़ता है।

१०

तम एव ज्योतिरभूद् द्विजेन्द्रपादप्रसादतः किमिदम्।
तत्राम्बरान्तराले लसन्ति यत्तारकामुक्ताः।।

आश्चर्य है कि अन्धकार स्वयं आज चन्द्रमा की किरणों को प्राप्त कर ज्योति (प्रकाश) बन गया है क्योंकि वहाँ,... आकाश के उस मध्य भाग में देखो,... वहाँ तारे रूपी मोतियाँ कैसे चमक रही हैं। तत्त्ववित् आचार्यों की प्रसन्नता से अज्ञान-रूपी अन्धकार स्वयं आत्म-प्रकाश के रूप में परिणत हो उठता है। देखो उस विशाल अम्बर में विदेह साधक कैसे तारों के समान जगमगा उठे हैं।

११

क्षणदां वीक्ष्य प्रतिपदमयममृतात्मा प्रसादमातनुते।
तेनैव याति सद्यस्तिमिरं ज्योतिःस्वरूपत्वम्।।

रात्रि (विश्राम देने वाली) को देखकर ही यह अमृतात्मा चन्द्रमा प्रतिपद अपनी प्रसन्नता (शीतल किरणें और स्वच्छ कान्ति) को फैला रहा है। यही कारण है कि रात्रि का अन्धकार भी झटपट ज्योति के रूप में परिणत हो रहा है।

१२

हित्वैव दक्षिणाशां समीरणः सुरभिताम्बरः शिशिरः।
मन्दं खिन्न इवैति प्रायेणोल्लासितालकाभिमुखः।।

दक्षिण अर्थात् कल्याण परक मार्ग को छोड़ने वाले की कहीं गति नहीं। अब देखिए ना - दक्षिण दिशा (रूपी नायिका) को छोड़ने का ही परिणाम है कि आकाश तक को सुगन्धित कर देने वाला (सुगन्धित वस्त्रों वाला) यह शीतल वायु (नायक) प्रसन्न अलकापुरी (लहराते केशपाश वाली नायिका) की ओर जा तो रहा है; लेकिन बड़ा ही खिन्न सा; उद्विग्न सा, धीरे-धीरे।

१३

फाल्गुन-माधव-मध्ये भवेन चित्रात्मनाऽमुना मधुना।
ये मूर्छिता न ते पुनरुत्तिष्ठन्ते श्रुतिं गतेनापि।।

फागुन और वैसाख के मध्य आश्चर्यजनक रूप से अवतरित होने वाले मोहक वसन्त ऋतु की मादकता से जो मूर्च्छित हुए; तो बस हुए! भाई ऐसे विरही तो फिर प्रियतम द्वारा कानों में शहद सी मीठी बातों के कहे जाने पर भी होश में नहीं आने वाले!

१४

एतावदेव परभृतकार्यमरण्ये रुतामृतं यदिदम्।
यो रासालविकासः स तु साध्यः सुरभिणैवेह।।

ललित वन-प्रान्त और उद्यान-वाटिकाओं में कोकिल का अमृत-सम कूजन ही उसकी उपस्थिति का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। और ये आम का बौराना?... ओ भाई चेतन तो चेतन, जड-पदार्थों को भी जो 'बौरा' दे वह इन आम्र-वृक्षों को क्यों न 'बौरा' देगा। इनके बौराने में तो वसन्त ऋतु ही पर्याप्त है।

१५

वदनैकजनितरागः कितवः किल किंशुकोऽयमवभाति।
सुमनोवक्रिमतोऽपि च सुमनोऽप्याकर्षयति चित्रम्।।

अपने स्वरूप मात्र से लोगों में अनुराग उत्पन्न कर देने वाला यह किंशुक (ढाक का फूल) तो बड़ा धूर्त है जी!... यह आश्चर्य नहीं कि एक फूल के रूप में यह; सुग्गे के मुँह सा स्वयं तो टेढ़ा-मेढ़ा है, पर उदार ह्रदय वालों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

१६

कान्ताङ्गुलीः स्वपल्लवमात्रेणाभर्त्सयन्नशोकोऽयम्।
यद्यप्यथापि तस्याः पादाहत्या विकासमुपयाति।।

अशोक अपने पल्लव मात्र से युवतियों की अङ्गुलियों की कोमलता को तिरस्कृत करता है, निन्दित करता है। लेकिन हाय;... फिर भी इसका फलना और फूलना स्वयं उन्हीं के पैरों की ठोकरों पर निर्भर है।

१७

स्वप्रेयसाप्यनाप्य स्वास्यासवसेकशालिसुमनःसु।
बत न बकुलेषु तस्याः प्रेयस्याः प्रेम तद्विरहे।।

बकुल ने भी क्या सौभाग्य पाया है!... युवतियों के हाव-हेला-विभ्रम-विलास आदि साङ्गोपाङ्ग प्रेम से ही यह सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि तरुणियों के मादक प्रेम की उस स्थिति को; कि रति के उन्माद में जब तरुणियाँ मदिरा पिएँ और पीते हुए ही मुख में रखी मदिरा की एक कुल्ली इन बकुलों पर छोड़ें, - ऐसी मादक स्थिति को प्राप्त करके ही सन्तुष्ट होता है। हाय; यह सौभाग्य तो उनके प्रेमियों को भी दुर्लभ है।

१८

कण्टकचितोऽपि पाटल एष तनोत्युत्सवं मनसि यूनाम्।
सुकुमारोऽतिसुरभिरपि निजबालायाः कपोल इव।।

काँटों से घिरा हुआ भी गुलाब/ मानो उत्सव ला देता है/ मनो-मस्तिष्क में युवक-युवतियों के/ ज्यों सुगन्धित और सुकुमार/ प्रथम स्पर्श से रोमाञ्चित/प्रेमिका के गुलाबी गाल देखकर/ हलचल सा उठे/ अन्दर कहीं प्रेमी के।

१९

केतक्येषा मधुपानुपकर्षयति कण्टकाकुलापि चिरम्।
रसहीनापि रजःस्वल - कुसुम - भरैर्वारवनितेव।।

केतकी/ काँटों से घिरी/ काँटों से भरी केतकी/ रसहीन/ लेकिन रजः परिपूर्ण/ अपने पुष्प-सम्भार से ही/आकृष्ट कर लेती/ मधु-लोलुप भौंरों को/ जैसे वार-वनिताएँ/ रसहीन/ विपत्तियों की खान वार-वनिताएँ/ बलादलंकृत रूप-यौवन से ही सही/ आकृष्ट कर लेतीं/ विषयी कामी-जनों को।

२०

जातिरियं तु यथार्थं सुमना एवास्ति माधवे यदलम्।
विकसनमुपैति षट्पदपरितृप्त्यै स्वीयसौरभ्यात्।।

चमेली; अपने नाम को वास्तव में अन्वर्थ करती है कि वह 'सुमना' (सुन्दर मन वाली) है। अब देखिए ना - वसन्त में यह अपने सुगन्ध को फैलाती, रस के लोभी भँवरों की तृप्ति के लिए क्या ही हर्ष और आवेग के साथ फलती और फूलती है।

२१

बत कुसुमिता लता अपि निजवनिता इव भवन्ति युवसु मुदे।
अपि किल परिमलबहलाः समीरलोलाः स्रवद्रसाः क्वापि।।

लताएँ; जिनमें पुष्पों का उद्गम मात्र भी हुआ हो;... अपनी प्रेमिकाओं की भाँति प्रेमियों के आनन्द का विषय हो जाती हैं। फिर उन लताओं (प्रेमिकाओं) के क्या कहने जिनसे सुगन्धि छिटक रही हो, रस (आनन्द) चू-सा रहा हो और चञ्चल हवाएँ जिनसे अठखेलियाँ कर रही हों!

२२

पीतरजःसङ्कुलमिदमम्बरमाकलयतीव जयतीयम्।
प्रथमर्तुमती युवतिः किमसौ नहि नहि सुरव्रततिः।।

पीतरजःसङ्कुल (युवति-पक्ष में - रजःस्राव को सोख लेने वाले, सुरव्रतति पक्ष में - पुष्पों के पीले-पीले परागों से निथुरे) अम्बर (वस्त्रों और आकाश) को धारण करती हुई यह क्या ही उत्कृष्ट शोभा को प्राप्त हो रही है। ऐ भाई;... क्या यह प्रथम बार ऋतुमती हुई कोई युवती है?... नहीं-नहीं यह तो नन्दनवन की लता; सुरव्रतति है।

२३

अणुमात्रामपि सुदृशो दृष्टिं लब्ध्वा पुमान् कृतार्थः स्यात्।
प्रत्यङ्मुखत्वपूर्वं श्रुत्यन्तं सा प्रयाति यदि।।

बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों वाली युवतियों का अपनत्व भरे किसी एक चञ्चल कटाक्ष भर से पुरुष कृतकृत्य, धन्य-धन्य हो उठता है। हाँ ये आँखें बड़ी-बड़ी होनी चाहिएँ; कानों तक विस्तीर्ण; सुरम्य; सुडौल।

उसी प्रकार जैसे किसी साधुदर्शी महात्मा की तनिक सी सङ्गति-मात्र प्राप्त हो जाए; उसके उपदेश अनुराग-पूर्वक कानों तक पहुँच भर जाएँ, फिर देखिए कैसे मनुष्य और उसका जीवन कृतार्थ हो उठता है।

२४

अधरारुणवर्णवती स्मेरसिता सुरतरङ्गिणी वाणी।
मिलिताऽपाङ्गासितया तरुणी बभूव त्रिवेणीयम्।।

भाई ये तरुणियाँ भी किसी त्रिवेणी (सङ्गम) से कमतर नहीं होतीं। जी हाँ वो देखिए, उसके लाल-लाल ओठों को, अरुणाभ सोन-नदी को। उनके मुस्कुराहटों और इस हसीन मुस्कान के बीच निकलने वाली उनकी आवाज को, कि गङ्गा की स्वच्छ जलधारा मानों प्रवाहित हो उठी हो। आँखों को;... नहीं-नहीं आँखों की छोर को; कि यमुना मानो अपनी समूची नीलिमा के साथ यहाँ प्रवाहित हो उठी हो, - है न तरुणियों में त्रिवेणी-वास।

२५

स्वयमेवालिङ्गन्तीम् अतिसरसाम् उन्मिनीमिवात्मरतिः।
धन्यश्चुम्बति युवतिं रहसि प्रेम्णा प्रमोदाय।।

बहुत सौभाग्यशाली होते हैं वे/ जो सरस व सरल हृदय वाली/ प्रणय के अतिरेकवश काम-भावों से परिपूर्ण हुईं/ स्वयं ही आलिङ्गन करने को बढ आयीं/ अपनी प्रेमिकाओं का/ नितान्त अकेले में/ घने आलिङ्गन में/ किया करते हैं चुम्बन/ ज्यों कोई आत्म-रन्ता योगी/ आत्मनियोगी/ रमता है/ नितान्त एकान्त में/ अपनी ही रति से/ आत्मरति से।

२६

यस्याः कोमलकरतलसंस्पर्शादेव पुलककुलशाली।
भवति पुमानिह सेयं प्रकृतिरिवाभाति निजयुवतिः।।

जिसके कोमल हाथों के सुखद स्पर्श-मात्र को प्राप्त कर पुरुष रोमाञ्चित और प्रफुल्लित हो उठता है (आगे की और क्या-क्या कहिए), आज वही अपनी प्रेमिका साक्षात् प्रकृति सी प्रतीत होती है।

बन्धु!.... प्रकृति को प्रेमिका सी समझिए तो सही।

२७

विदलितहारं मर्दितसुमनोगुणमुद्गलद्ग्रन्थि।
आलिङ्गनं मृगाक्ष्या यदि किं ज्ञानेन सरसानाम्।।

हरिण-नयना प्रेमिकाओं के वे आलिङ्गन कि जिनमें स्तनों पर फ़बता हार टूटकर बिखर जाए, मालाएँ टूट पड़ें और फूल मसल दिए जाएँ, कि जिनमें वे तमाम गाँठें खुद-ब-खुद खुलती चली जाएँ - ऐसे आलिङ्गनों के बाद प्रेमियों को अन्य किसी ज्ञान की क्या आवश्यकता?...

जिसमें सांसारिक वस्त्राभूषण व्यर्थ हो जाते हैं, सत्त्व-रज-तम गुणों का मर्दन हो जाता है, पारमार्थिक रहस्य प्रकट हो आते हैं, प्रकृति के ऐसे किसी आलिङ्गन के बाद योगियों को अन्य ज्ञान-विज्ञान की क्या आवश्यकता?

२८

भेदितहृदयग्रन्थ्यपि छेदिततत्संशयं क्षपितकर्म।
तत्त्वज्ञानमिवेदं सुदृशामालिङ्गनं जयति।।

सुघड़ आँखों वाली नायिकाओं के आलिङ्गन, कि जिनमें हृदय में पड़ी तमाम गाँठें खुद-ब-खुद खुलती जाती हैं, कि जिनमें सङ्कोच औ' लज्जा के सभी संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, कि जिनमें अन्य सभी कर्तव्य समाप्त हो चुकते हैं, - अहह! ये प्रेमिकाओं के आलिङ्गन हैं या तत्त्व-ज्ञान की अवस्था।

२९

कुचकस्तूरीमुद्रा - रूषितदयितोरसः सरसः।
आश्लेषादपि कोऽन्यः सम्भोगोऽस्तीह सुन्दर्याः।।

कहो तो सच ही,... चन्दन कस्तूरी-रज-धूसर-कुचकलशों से नत वनिताओं; के आलिङ्गन से बढ़कर, भी है कोई उपभोग जगत् में?... कहो तो सच ही,...

३०

सर्वत्र भासितात्म प्रद्योति च निर्मलं विशालमपि।
ब्रह्मज्ञानमिवात्मक्रीडागारं तु दार्पणं लसति।।

यह निर्मल, विशाल और चमकीला शीशमहल क्या हुआ आत्म-क्रीडा का आलय हो गया! जिधर देखो उधर ही अपनी आत्मा प्रतिबिम्बित हो उठती है! जिधर देखो उधर ही ख़ुद और फिर ख़ुद दीख पड़ें!... भाई वाह; यह शीशमहल क्या हुआ 'ब्रह्मज्ञान' हो गया।

३१

सुमनोमात्रविरचिता स्फीताऽतुलनिर्मलाऽवदाता च।
आत्मरतिं प्रति योग्या तुर्यावस्थेव शय्येयम्।।

बिछावन सी बुढ़ापा या बुढ़ापे सी बिछावन, भाई दोनों ही ग़ज़ब की चीज़ें हैं!... दोनों में ही आनन्द लेने की योग्यता है। एक में अपनी प्रेमिका या पत्नी से रति-सुख लीजिए तो दूसरी में अपने आप में मगन रहिए। एक सुमनों से ही सजी-बनी है तो दूसरी सुन्दर मन से। दोनों ही समृद्ध, निर्मल, स्वच्छ और सफ़ेद।

३२

आलम्बितालकं पुनरावर्तितनयनतारकं सरसम्।
भ्रामितवदनशशाङ्कं चुम्बनममृताप्तये ध्रुवालयवत्।।

चुम्बन; कि लिए जाने के लिए जब हाव, हेला और विव्वोक से इठलाती प्रियतमा के केशपाश को मुट्ठियों से भींचा गया हो, ना-ना करती भी जिसकी रसीली आँखें; आँखों के तारे; चञ्चलता से इधर-उधर छिटक रहे हों; मटक रहे हों, रोकने की पुरज़ोर कोशिश में जिसका चन्द्रमा सा मुख मचल रहा हो,... हाय ऐसा कोई चुम्बन; अमृत-तत्त्व की प्राप्ति ही तो है। वैकुण्ठ-सुख-लाभ ही तो है।

३३

निजखञ्जनदृशि रञ्जनमञ्जनविरहेऽपि लोचनाभ्यां यत्।
तत्किं साञ्जनरञ्जितजनजीवितवीक्षणेऽन्यदीयायाः।।

काजल नहीं; तो न सही, बिना काजल की ही 'अपनी' की खञ्जन-सी आँखों में जो आनन्द है, वह क्या कजरारे आँखों वाली लेकिन जन-जन को अनुप्राणित करने वाली 'दूसरी' के देखे में है?

३४

तस्याः कपोलहल्लकमध्यदले स्वीयलोचनभ्रमरः।
भ्रममाणोऽपि न तृप्यति कण्टक इव नवघटीयन्त्रे।।

उसके लाल-लाल कमल से गालों पर घूमता-मँडलाता/ आँख-रूपी भँवरा/ बार-बार घूमता-मँडलाता भी/ तृप्त नहीं होता। ज्यों घड़ी का काँटा/ घूमता-मँडलाता रहे अपनी धुरी पर/ उसी के चारों ओर।

३५

मुग्धाया अधरामृतधयने सुधियोऽपि जायतेऽन्धत्वम्।
उज्झति किं नीरांशं स राजहंसो बिसास्वादे।।

अल्हड़ युवतियों के अधरामृत के रसपान की जो लालसा हुई तो तुम क्या;... बड़े से बड़े ज्ञानी औ' महात्मा भी अन्धे हो जाते हैं। अजी 'दूध का दूध पानी का

पानी' करने वाले राजहंस भी आस्वाद के समय क्या विसतन्तुओं से जल के अंश को दूर कर सकते हैं?

३६

भ्रामितवदनसरोजा चललोचनखञ्जरीटमिथुनाढ्या।
हंसास्त एव सरसा यैरिह निजपद्मिनी समुपभुक्ता।।

अपनी पद्मिनी (पद्मिनी-नायिका) का, कि जिनके कमल-से कोमल सुन्दर मुख कामातिरेक से झूम रहे हैं, कि जिनकी कामातुर आँखें खञ्जन-पक्षी के जोड़ों की नाईं सुडौल और चञ्चल हुई जाती हैं, ऐसी अपनी रस-पगी पद्मिनियों का सम्यक् उपभोग करने वाले ही हंस (साधु पुरुष) हैं।

३७

यद्दर्शनादिलोभान्मुक्ता अपि गुणमुपेत्य निकटस्थाः।
अन्तर्द्विजाश्च शुद्धास्तस्य रसं ये धयन्ति धन्यास्ते।।

सुन्दरियों के मोती से; स्वच्छ स्फटिक जैसे दाँतों से युक्त अधर हों या परमार्थ को प्राप्त तत्त्ववित्, दोनों के ही रस को जो प्राप्त करें; धन्य हैं।

अब देखिए ना तरुणियों के दाँतों की चमक-दमक देख मोती भी फीके पड़े उनके दास हो जाते हैं और परमतत्त्व के ज्ञाता साधक के दर्शन-मात्र को आए श्रद्धालु भी उनके गुणों से खरीदे दास हो जाते हैं। आन्तरिक सौन्दर्य से युक्त और शुद्ध ऐसे अधरों और साधु-पुरुषों के रस का जो पान करें तो वे धन्य तो हैं ही।

३८

स्मितचन्द्रिकया पाटलमधरदलं येन दष्टमबलायाः।
विचकिलरसालपल्लवमिव कलकण्ठः स किं न स्यात्।।

मुस्कुराहट की चाँदनी जो छिटकी तो गुलाबी होठ और भी लाल हो उठे मानो आम के अधखिले नए कोमल पत्ते पर चाँदनी छिटक आई हो! अब काम से निर्बल युवतियों के ऐसे इन होठों को सुरत-काल में जिन्होंने बेरहमी से पीया; वे सुन्दर कण्ठ वाले न हुए तो क्या होंगे !

३९

व्याकीर्णबालमधुपं भ्रान्तविलोचनचकोरमिथुनमपि।
रामाननं तामरसं रसयति को राजहंसतोऽन्यत्र।।

बिखरे-बिखरे घुंघराले बालों से घिरा मुख; यूँ लगे कि भौंरे उतर पड़े हों इस पर, बड़ी-बड़ी नशीली आँखें कि लगे चकवा-चकई चहक रहे हों इनमें, - युवतियों के (और भगवान् राम के) ऐसे लाल-लाल मुख-कमल का आनन्द; राजहंस (प्रेमी और भक्त) को छोड़; और कोई क्या लेगा !

४०

कोमलविमलातिलघु द्विजराज्याप्यन्तरङ्गयानाप्यम्।
मुक्ताल्या निकटकयाप्यमृतमिदं पिबति को रसज्ञमृते।।

प्रेमिका के अधरों और तत्त्व-ज्ञान में अमृत होता है; सही है। लेकिन इस अमृत के समीप ही निवास करने वालों को भी यह नसीब कहाँ? इसके पात्र तो वही होते हैं जिन्हें इसकी पहचान और ग्रहण करने की कला मालूम है।

निर्मल दाँतों और तत्त्वविदों का अन्तरङ्ग होकर भी वह अमृत ख़ुद इन मोती जैसे दाँतों और तत्त्वविदों को कहाँ नसीब होता?

४१

अमृतावाप्तिः क्वापि न सुधियां बिम्बावलम्बमृते।
तस्मात्कथं न सुदृशो रसिकैर्बिम्बाधरश्चुम्ब्यः।।

बिना किसी बिम्ब (प्रतिमा, मूर्ति) का अवलम्ब लिए बड़े से बड़े तत्त्वज्ञानियों को भी अमृतत्व की प्राप्ति नहीं होती। तो बिचारे ये रसिक कामी क्यों न प्रेमिकाओं के अधर-बिम्बों का चुम्बन किया करें! इन्हें भी तो उसी की चाह है, अमृत की !

४२

चक्रयुगं चन्द्रास्या अपि हृदये स्थापयन्ति पद्मिन्यः।
मित्रप्रीत्येति प्रियनखदंशचन्द्रैर्निपीड्यते किमु तत्।।

सूर्य से मैत्री के कारण ही मानो पद्मिनियाँ अपने हृदय-भाग में चकवा-चकई के जोड़े को स्थान देती हैं। क्या सूर्य से मित्रता के कारण ही चन्द्रमा इस जोड़े को सताया करता है?...

चन्द्रवदना युवतियों ने भी प्रेमी के आनन्द के लिए, चकवा-चकई के जोड़े से गोल औ' सुडौल स्तनों को धारण कर यही अपराध किया और परिणााम? यह कि मित्र-प्रीति के अपराध में नाख़ूनों से बने आधे चाँद अब स्तनों को पीडित कर रहे हैं।

४३

कठिनाभ्यामपि याभ्यां कृष्णमुखाभ्यां गुरुत्वमाप्ताभ्याम्।
मुक्ता अपि गुणबद्धाः स्वाधोरचिताः कथं न तौ मर्द्यौ।।

स्वयं को महान्, गुणवान् और; और जो कुछ भी समझना हो समझिए! किन्तु दूसरे का अनादर क़तई न कीजिए! भयानक परिणाम होता है भाई!...

युवतियों के इन स्तनों को देखिए!... ख़ुद तो कैसे कठोर होते हैं, कैसे तो काले-काले मुँह हैं इनके, और क्या ही बड़ा-बड़ा नुकीला आकार पाया है इन्होंने! तिस पर इनका अहं तो देखिए कि धागे से गुम्फित मोतियों (हार) को अपने से नीचे धरते हैं, नीचा रखते हैं। अब भला बताईये ऐसे दुष्ट स्तनों का मर्दन न हो तो किसका हो?

४४

हृदयमुपैष्यति मदनोऽधुनेति दृष्टिर्ययौ श्रुतेरन्तम्।
सद्वृत्तं च गुरुत्वं तेनाप्यासाद्यते सुदृशः।।

यौवन में प्रवेश करती इस नायिका के हृदय में अब कामदेव भी साथ के साथ उतरेंगे। हृदय में कामभावों के इस आविर्भाव का आँखों ने अनुमान कर लिया और झटपट यह बात कहने; काम-विकारों से सावधान रहने की सलाह-मशविरा करने कानों तक पहुँच गईं।

ओ भाई तुम्हें क्या लगता है सुन्दरियों की बड़ी-बड़ी आँखें क्या यूँ ही कानों से जा मिलती हैं? ना जी ना;... यौवन आने पर इनकी आँखें आचार, शील और चारित्र्य सीखने और सिखाने ही कानों तक जाया करती हैं।

४५

बालाः कृष्णत्वमिता अधरोऽप्यमृतायते प्रसादेन।
गतिरपि च मान्द्यमाप्ता चित्रमभूद् बाल्यपरिपाके।।

बालपन के रीतने पर वह देखो क्या ग़ज़ब हुआ कि युवतियों के बाल टेढे-मेढे घुँघराले हो चले। प्रसन्नचित्त रहने के कारण सहज गुलाबी होंठ और भी गुलाबी हो उठे; अमृत के प्याले हो चले और स्तन, जाँघ और नितम्ब के भार से गति और भी मन्द हो उठी।

४६

कृत्वा भागत्रितयं मिलितं गुम्फेन चारु संयमनम्।
कचसुमनोमुक्तानां कस्य न वा निर्जरस्य वशतायै।।

अहह;... तीन भागों में बँटी यह चोटी; बालों, फूलों और मोतियों के बनाव-सिंगार से अजब फ़बती; किस मनुष्य, मुनि, महात्मा या देवता तक को वश में रखने का साधन (कोड़ा) नहीं?

४७

अभिभूषितालकोऽयं स्वालम्बितपुष्पकश्च धनद इव।
कस्य न रत्यै युवतेः सद्यः सीमन्तसिन्दूरः।।

स्वच्छ, मृदु तथा सुसज्जित केशपाशों को और भी सुन्दर और भी सुदर्शन बनाता, जूडों में सजे पुष्पों से और भी मनोहारी; आकर्षक होता स्त्रियों की माँग में भरा पवित्र सिन्दूर;... मानो अलकापुरी को अपनी उपस्थिति से ही अभिभूषित कर देने वाले और पुष्पक-विमान पर आरूढ कुबेर सा,... सिमन्तिनियों की माँग का यह सिन्दूर भला किस व्यक्ति में पवित्र प्रसन्नता नहीं उत्पन्न कर देता।

४८

सततं स्थितस्त्रिवेण्यां सह सुमनोभिः श्रितश्च मुक्ताल्या।
योगीश्वर इव चूडामणिरन्तर्ध्वान्तमेव हन्ति सति।।

तीन भागों में बँटी युवतियों की चोटी (त्रिवेणी) में ही सदा स्थित रहने वाला,

फूलों और मोतियों (साधु-सन्तों और जीवन्मुक्तों) का आश्रय लिये रहने वाला यह चूडामणि (एक आभूषण जिसे युवतियाँ केशपाश के सबसे ऊपरी हिस्से पर सौन्दर्य के लिए बाँधती हैं) किसी योगीश्वर सा आन्तरिक अन्धकार को दूर करता रहता है।

४९

कुङ्कुमतिलकच्छलतः पल्लवितः किमनुराग एवायम्।
मङ्गल एवोच्चस्थोऽप्ययगः सौभाग्यसाधकः सुदृशः।।

सिन्दूर-तिलक के बहाने कामिनियों के ललाट पर क्या अनुराग स्वयं पल्लवित हो आया है?... उच्च स्थान पर मङ्गल (जिसका फल रूप-यौवन-विद्या-पद-प्रतिष्ठा और इनसे सम्बन्धित गर्व है) होने के बावजूद यह सुन्दरियों में आकर्षक और स्पृहणीय सौन्दर्य सम्बन्धी सौभाग्य पिरो रहा है।

५०

सद्वृत्तभूरिभास्वरसरत्नमुक्ताश्रितः सुवर्णगुणः।
य इह स एव तु नासिकनिवसतियोग्यः कृतातिसौभाग्यः।।

जीवन्मुक्त साधकों के आश्रित, सच्चारित्र्य, तपश्चर्या तथा उच्च गुणों से युक्त सौभाग्यवान् ही नासिक जैसी पवित्र नगरी में निवास का सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

ओ बन्धु! युवतियों की नाक देखी है; इनमें नथ-नथिया-लौंग या अन्य किसी आभूषण को देखा है? बड़े सौभाग्य से हीरे, माणिक्य, मूँगे या मोती जैसे रत्न जब सोने में गुथते हैं तभी इन्हें यहाँ निवास प्राप्त होता है।

५१

श्रुतिशिरसि स्थितिभाजां मुक्तानां बन्धनं सुवर्णगुणैः।
यद्यपि सच्छिद्रत्वादथाऽप्यदः किल सुमङ्गलायैव।।

क्या ही बड़प्पन है दोनों का!... मोती; अलङ्कार के रूप में कान और शिर पर स्थान पाती है तो जीवन्मुक्ति का साधक वेदों में विचरण करता है। लेकिन एक छिद्र के कारण मोती और जीवन्मुक्त महात्मा; दोनों ही बन्धन में पड़ जाते हैं। मोती सोने के धागों और साधक सांसारिक बन्धनों में। चलो अच्छा है, यह बन्धन भी उनके मङ्गल के लिए ही तो है।

५२

मुक्तावलियुक्तमिदं नानारत्नान्वितं महाललितम्।
मङ्गलसूत्रच्छलतः स्वप्रेयोजीवितं सुदृक्कण्ठे।।

सुन्दरियों के कण्ठ में अठखेलियाँ करने वाले, मोतियों से झिलमिल, कई रत्नों से गुँथे, मनोरम इन आभूषणों को आप मङ्गलसूत्र क़तई न समझें! मङ्गलसूत्र के बहाने ये तो उनके प्रियतमों के प्राण हैं जो उनके हृदय और कण्ठ-प्रदेश में अठखेलियाँ करते रहते हैं।

५३

गुणमयता रञ्जितता युक्ता बत शाटकस्य धन्यस्य।
यदयं चिरं युवत्याः सर्वाङ्गालिङ्गनामृतं पिबति।।

मनचाहा आनन्द लेना हो; वह भी दीर्घ काल तक तो व्यक्ति को चाहिए कि स्वयं में गुणों का आधान और दूसरे के हृदय को जीतने की कला विकसित कर ले। अब देखिए न; - अपने इन्हीं गुणों के कारण यह शाटक (साड़ी) सुन्दरियों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में चिपका; इनके आलिङ्गन-रूपी अमृत को पीता रहता है, पीता ही रहता है।

५४

सद्वृत्तयोः कठिनयोरुन्नतयोः सततनिकटसंस्थितयोः।
हृदयगयोरपि गुप्त्यै गुणमय्येवेति कञ्चुकी जयति।।

चोली;... वैसे तो है यह कुछ नहीं, लेकिन बड़ा भारी काम करती है भाई। अब देखिए न - बड़े-बड़े, गोल, सुडौल, बड़े ही कठोर, औ' नुकीले और हमेशा ही साथ-साथ रहने वाले इन स्तनों को छिपाए रखने में इसका हुनर।... भाई वाह;... चोली की जितनी भी प्रशंसा करो; कम है।

५५

रे कङ्कणानि भवतां सद्वृत्तानां सुवर्णरचितानाम्।
दिव्यालङ्काराणां काव्यानां च ध्वनिर्मनो हरति।।

भाई कङ्गन; आप और काव्य, दोनों की ही बनावट एक सी है! आप सद्वृत्त (गोल-मटोल) हो और वह भी सुन्दर छन्दों से विभूषित! आप सुवर्ण (सोने) से

बनाए गए हो तो वह भी सुन्दर वर्णों के मेल से! आप दोनों ही दिव्य अलङ्कारों से युक्त हो! आप दोनों की ही ध्वनि किसका मन न हर ले!

५६

नूपुर तव हंसगतिर्मञ्जुध्वनिरथ सुवृत्तमपि सुदृशः।
पदसन्ततसेवनतः स्फुरति मुमुक्षोरिवाखण्डम्।।

तत्त्वद्रष्टा साधकों की कृपा से उनके शरण में पड़े मुमुक्षुओं को ज्यों अखण्ड ब्रह्म का स्फुरण हो आवे त्यों ऐ नूपुर! सुन्दरियों के पैरों में पड़े, उनकी सेवा करते-करते क्या ही हंसिनियों सी मतवाली चाल, रुन-झुन रुन-झुन सी मञ्जुल ध्वनि और सुन्दर आकार तुझमें प्रकट हो आया है?

५७

रच्यन्ते नखलेखाः प्रेयस्याः कुचयुगे प्रियेणाऽलम्।
स्मृत्वैव नैजहृदयप्रविदारणमीक्षणैर्दूरात्।।

सम्भोग की अवस्था में प्रिय अपनी प्रेमिका के स्तनों पर नाखून के कितने ही निशान बना देता है, बल्कि खुरच डालता है। मालूम है ऐसा असामान्य व्यवहार वह क्यों करता है? अजी इसलिए कि कभी-कभी दूर से भी देख लिए जाने पर ये उत्तुङ्ग स्तन भी प्रिय को ऐसा कामासक्त कर देते थे कि बिचारे का हृदय तार-तार हो उठता था। अब जो मौका मिला तो उस कसक को याद कर वह भी... ।

५८

शिव शिव कृष्णमुखत्वे सद्वृत्तत्वेऽपि चोन्नतत्वेऽपि।
सरसत्वेऽपि च मर्दनमभवत्काठिन्यतः कुचयोः।।

हाय!... हाय!!... ऐसे सुन्दर, सुगठित आकार-प्रकार वाले, बड़े-बड़े औ' नुकीले, रस से सराबोर स्तन भी कहीं मर्दन के योग्य हों? लेकिन अब इसका क्या कीजै कि इनका भी मर्दन हो ही जाता है।... हो भी क्यों न भाई! सब कुछ के बावजूद ये स्तन; होते बहुत कठोर हैं! अब इतने कठोर होवोगे तो मसल तो दिये ही जावोगे!

५९

प्रेयोविरचितनीवीनिर्मोक्षक्षणविलक्षणाक्षीणाम्।
वृत्तीनां च सतीनां स्मितदीप्तेरमृतमपरं किम्।।

बड़ी उत्कण्ठा, प्रेम और रच-रच कर स्वयं द्वारा बांधी गई स्त्रियों की नीवि और मनुष्य-हृदय की गाँठों के खुलने पर मारे काम और भाव के आवेश जिनकी आँखों की रंगत ही कुछ और हो जाती है; ऐसी इन सती स्त्रियों के मन्द मुस्कान और चित्तवृत्तियों के प्रकाश से अलग अमृत का आनन्द भला और क्या होगा?

६०

प्राणेश्वरैकदृष्टं निखिलानन्दैकनीडमतिविपुलम्।
ध्यानमिव भाति जघनं सुदृशः केनापि सुकृतेन।।

अहह!... कोई बहुत ही बड़ा पुण्य रहा होगा सुन्दरियों का कि उनके जघन-स्थान; ईश्वर-ध्यान की समानता रखते हैं। अब देखिये न; दोनों ही - लोकोत्तर आनन्द के एकमात्र अधिष्ठान, अपने प्रिय अथवा ईश्वर मात्र के द्वारा देखने योग्य और अत्यन्त विशाल स्वरूप वाले होते हैं।

६१

अमृतास्वादनसरसः पयोधरोपरि निवासजोल्लासः।
नहि निर्जरे नरेष्वपि सुरतानन्दोऽत्र सम्भाव्यः।।

कौन कहता है कि अमृत के समान आस्वाद वाला और आकाश से भी ऊँचे स्वर्ग में निवास-सम्बन्धी परमानन्द केवल देवताओं को ही प्राप्त है।

अजी अमृतास्वाद के समान सरस, अत्यन्त उन्नत स्तनों पर विश्राम के कारण स्वर्ग सा उल्लास है जिसमें ऐसा सुरत (मैथुन) सम्बन्धी आनन्द तो मनुष्यों में भी सुलभ है। हाँ चुनाव आपको करना है - स्वर्ग का विपुल आनन्द या युवतियों के स्तनों पर विश्राम का क्षणिक आनन्द?

६ २

मादनमिव कनकासनमिन्दुमुखीजघनमीक्षितं येन।
तत्सारूप्यमृतेऽसौ किमधिकृतः स्यात्तदारोहे।।

व्यक्ति को चाहिए कि अपनी योग्यता, शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार ही किसी वस्तु की प्राप्ति और उसके उपभोग की इच्छा रखे!...

अब देखिए ना - कामदेव के आसन; स्वर्ण-सिंहासन के समान चन्द्रमुखी युवतियों के जघन को भाग्यवश देख लेने वाला भला इनके उपभोग का भी अधिकारी हो सकता है?... अजी इसका अधिकारी तो वही हो सकता है जो स्वयं कामदेव सा सुन्दर, योग्य, शक्ति और सामर्थ्य वाला हो।

६ ३

बहिरन्तर्वा किञ्चिन्न भाति यत्रेदमिन्दुवदनायाः।
निधुवनमिषेण जातं किं वा प्रकटं निजाद्वैतम्।।

न तो बाह्य जगत् की कोई सुध-बुध; और ना ही आन्तरिक चेतना का कोई अभिज्ञान!... ओह; तो क्या इन्दुवदना प्रेयसी के साथ सुरत के क्षणों में मुझ में 'अद्वैत' प्रकट हो आया था? दो की सत्ता का अभाव;... एक ही सत्ता का सद्भाव!... जिसमें आनन्द ही आनन्द का बोध होता है, परमानन्द का, ब्रह्मानन्द का!

६ ४

विगलितकेशालम्बां वसनानवगूहिताखिलावयवाम्।
जगतः स्थितिमिव युवतिं सत्त्वादालिङ्ग्य शेरते मत्ताः।।

सुरत की थकान से निढाल सोती युवतियाँ और इन्हें अपने आलिङ्गन में लेकर सोने वाले मदमस्त; हाय क्या ही ऊँची सीख देते हैं! देखिए ना -

प्रकाश के अभाव में भी प्रकट अवयवों वाली घोर रात्रि और रात्रि सी युवति; सुरत की थकान से निढाल, बिखरे हुए केश, निर्वस्त्र; ऐसी युवतियों को आलिङ्गन में लेकर तो मदमस्त ही सोया करते हैं।

अजी अप्रमत्त के लिए तो जगत् की यह स्थिति (मध्यरात्रि) साधना का काल है, बेखबर सोने का थोड़े ही - 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'....

६५

आनन्दामृतभरितं विरतौ विगताञ्जनं विशालं च।
लोचनयुगलमलौल्यं कैवल्यं चेक्षते धन्यः।।

विशिष्ट रति-क्रीडा के आनन्द से परिपूर्ण, चुम्बन से जिनके काजल मद्धिम पड़ चुके हैं और आनन्दातिरेक के कारण जिनकी चञ्चलता अब क्षीण हो चुकी है, ऐसी बड़ी-बड़ी आँखों का आनन्द कोई भाग्यवान् ही ले पाता है।

ठीक उसी प्रकार जैसे - विरति के कारण आनन्द से परिपूर्ण, बार-बार किये गए शास्त्राभ्यास के कारण जिसमें अज्ञान-रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है ऐसे असीम कैवल्य का आनन्द कोई भाग्यवान् साधक ही ले पाता है।

६६

नैजांशुक - संवरण - क्षमताहीनं रसैकरूपं च।
कस्य न लोचनतृप्त्यै बिम्बमिवेन्दोर्वपुः स्त्रियाः सुरते।।

सुरत से अलसाए अङ्ग; चाहे ईश्वरासक्त साधक के हों या कामासक्त तरुणियों के, देखने वाले में एक विशिष्ट आनन्द का संचार कर देते हैं।

सुरत-क्रीडा से हारे-थके और यूँ अलसाए कि अपने ही शरीर से फिसल पड़े कपड़ों को उठाने का भी जिनमें सामर्थ्य नहीं, रस से सराबोर, पूर्णिमा के चाँद से; दूध से धोए से सुन्दरियों के कोमल और मांसल अङ्ग,... हाय इन अङ्गों को देख किस व्यक्ति की आँखें तृप्त नहीं हो जातीं।

६७

तल्पादुत्तिष्ठन्तीमेकतरं करमधो निधायात्र।
च्युतमण्डनभूषामपि योषां द्रष्टुं कृतित्वमिह केषाम्।।

सुरत-ताण्डव के प्रारम्भ में ही/ रिस पड़े थे जिसके कपड़े और गहने/ आप से आप/ बाद दर बाद/ सुरत-परिम्लान/ पूर्णतः परिग्लान/ अपने ही अङ्गों के भीतर छिपाती/ छिपाए न छिपने वाले अङ्गों को एक हाथ से/ और अर्द्धविकसित पद्म-से; दूसरे हाथ से/ मदन-मन्दिर को ओट दिए/ खुद के औद्धत्य को प्रकट करती शय्या से/ मानो मुँह छिपाए/ सकुचाती/ उसे छोड़ कर जाती/ प्रेयसी का वह रूप और उसका क्षणिक दर्शन/ जन्मों का सौभाग्य/ युगों का पुण्य-अर्जन।

६८

स्नेहदशाग्रसमृद्धा व्याकीर्यत्केशकज्जला जयति।
मदनप्रदीपकलिका प्रमदा रतवातचञ्चलापि मुदे।।

स्नेहातिरेक को प्राप्त कर उद्दीप्त हो उठी/ आषाढ के प्रथम जल-विन्दु-वाहक काले घने मेघ से/ जिसके केशपाशों ने अपना संयम तोड़ दिया है/ और काजल अपनी मर्यादा अशिष्ट रूप में लाँघ चुके हैं/ सुरत-आँधी के घनघोर झंझावातों में भी/ उद्दाम-काम-दीपक की बाती/ लौ सी इठलाती/ बल खाती/ युवति/ जयति।

६९

केशाः स्पृशन्ति भूमिं सह सुमनोभिः पतन्त्यधो मुक्ताः।
चपलपयोधरयुगलं हृदये विद्युद् विभर्ति विपरीतम्।।

और कि केशपाश अब बिखर चुके हैं/ और बिखर कर फर्श को छू रहे हैं/ केशों में बंधे फूल/ पिरोयी मोतियाँ/ धीरे-धीरे फ़र्श पर बिखर रही हैं/ प्रियतम के सीने पर झुक आये ये कठोर और उत्तुङ्ग स्तन-युग्म/ यूँ तो स्पर्श ही इनका/ बिजली सी सनसनी पैदा कर देता है/ मनो-मस्तिष्क में/ लेकिन आज/ कोई और ही बिजली दौड़ रही है इनमें/ विपरीत होने पर।

७०

पतितेऽम्बरेऽप्यधः कथमूर्ध्वं रात्रिर्भ्रमत्यहो शशिनः।
चिक्रीडतुरपि चक्रौ कनक-लतोरसि तदैव चित्रमिदम्।।

वाह!... क्या दृश्य है; - अम्बर के रिस जाने (प्रातः हो जाने) के बावजूद चन्द्रमा के ऊपर यह रात भ्रमण कर रही? और इस रात में कनक-लताओं बीच यह चक्रवाक मिथुन क्रीडा में व्यस्त हैं?...

हो गया न भ्रम!... अजी यह विपरीत-रति-सन्नद्धा तरुणी है। ज़रा ग़ौर तो फ़रमाईये - विपरीत-रति के कारण इसके शरीर से एक-एक कर सारे वस्त्र नीचे गिर चुके। चन्द्रमा सा शुभ्र, श्वेत और शीतल मुख आनन्दातिरेक से उल्लसित हो उठा। इस मुख-चन्द्र के चारों ओर रात्रि की कालिमा के समान घने काले केश बिखर पड़े और स्वर्णाभ कान्ति वाले उरः-स्थल पर चक्रवाक-मिथुन के प्रतिस्पर्द्धी सुडौल और उत्तुङ्ग स्तन-युगल खेलने लगे।

७१

बिसवल्लीकनकाचलयुगलं कमलद्वयं च पूर्णेन्दुः।
स्वोरसि नर्तयतीति नु बालामुक्ताश्च तारकाः पतिताः।।

बिसतन्तु से स्वच्छ और स्वर्णाभ/ पर्वताकार/ दो-दो कमलों को/ अपने हृदय पर/ नचाते और रमाते चन्द्रमा को देख/ क्षितिज पर गिर रहे हैं तारे। ज्यूँ विपरीत-रति में/ चन्द्रवदना कामिनी के सीने पर/ उचकते-मचलते/ गौराङ्ग और स्वर्णाभ स्तनों को देख/ रिस पड़ती हैं/ कुटिल-कुन्तलों में सजीं/ फूल और मोतियाँ।

७२

स्वेदोदकविन्दु - सुन्दरमाननचन्दिरमवेक्षयन्नूर्ध्वम्।
पतितोऽप्यधः सुधामप्यधरीकुरुते रते प्रियः सुदृशः।।

विपरीत-रति-क्रीडा के कारण हारे-थके अङ्गों वाली दीर्घ-नयना प्रेयसी के पसीने से तर-बतर मुख को देखता; स्वयं नीचे पड़ा कामी, सुरत से प्राप्त आनन्द के समक्ष अमृत के आस्वाद का भी तिरस्कार कर रहा है।

७३

गलदम्बरातिचपलजघनतटमवलोक्य चातकप्रायः।
तृप्यत्यमृतावाप्तिं विनैव कश्चिन् महारसिकः।।

आकाश में घिर आए स्वाती नक्षत्र की बूँदों को बरसाने वाले मेघों से ही परितृप्त चातक सा कामी; सुरत-क्रीडा के प्रारम्भ में रस-विह्वलता के कारण विगलित-वसना नायिका की गतिशील जाँघों से ही परितृप्त कोई महारसिक; सुरत-जन्य आनन्द को प्राप्त किये बिना ही, परम तृप्ति को प्राप्त कर रहा है।

७४

उन्मर्दितसुमनःशतमतुलव्याकीर्णचारुमुक्तमपि।
आत्ममिथुनवत्सुप्यति मिथुनं विजयीह दैत्यवृन्दं च।।

उद्दाम सुरत-चेष्टाओं में जिसने शय्या पर पड़े पुष्पों का शतशः उन्मर्दन किया है, जिनके आभूषण में गुँथी मोतियाँ टूट-टूट कर शय्या के चारों ओर बिखरी पड़ी हैं,

हाय;... सुरत-क्रीडा के कारण हारे-थके और अवश अङ्गों वाला, एक दूसरे पर विजयी यह कामी-युगल सो रहा है। सो रहा है; जैसे कोई साधक अपनी आत्मा से मिथुनीभाव प्राप्त कर समाधिस्थ हो या जैसे विजयी दैत्यों का कोई समूह सो रहा हो।

७५

अन्योऽन्यं श्लिष्टाननकण्ठोरःस्थलभुजाढ्यजघनोरु।
सरसं सुप्यति यूनोर्निर्द्वन्द्वं द्वन्द्वमपि चित्रम्।।

जिनके मुख, कण्ठ, स्तन, बाहु और विशाल जाँघें परस्पर एक दूसरे से आश्लिष्ट हैं; उद्दाम सुरत से थककर चूर; अवश अङ्गों वाला यह कामी-युगल देखो क्या ही निश्चिन्त और रससिक्त हुआ सो रहा है।

७६

परिपाटलेन्दुवदना सङ्गीकृतकेशभारतिमिरा च।
परिगोपितभा चतुरा रजनीवापैति मन्दिरात्प्रातः।।

आरात्रि सुरत-क्रीडा में चुम्बन के कारण आताम्र मुख वाली, सुरत के विविध प्रकारों में बिखर चुके घनघोर अँधियारे से केशपाश को एकत्रित कर उनका जूडा बांध, आरात्रि उस उद्दाम सुरत की साक्षी दिए को बुझा कर वह देखो चतुर गृहिणी शयनगृह से यूँ निकल रही है ज्यूँ अन्धकार को समेटे, चन्द्रमा की कान्ति को छुपाए, ताम्रमुखी रात्रि घर से निकल रही हो।

७७

पश्यति हृदयक्षतमपि संश्रयते चारुवसनमभिचकिता।
दीर्घेक्षणाऽपयाते तमसि स्वेक्षां तनोति चादर्शे।।

स्त्री-पुरुष के बीच हो या आत्मा-परमात्मा के बीच; सहवास का आनन्द प्राप्त हो जाए तो इसमें हुए हज़ार कष्ट भी आनन्द ही देते हैं; बल्कि बार-बार और कई प्रकार से देते हैं। उद्दाम सुरत-ताण्डव में नखों से क्षत-विक्षत अपने स्तनों को देखती-आँकती, सुन्दर रेशमी वस्त्रों से आच्छादित भी चकित-चकिता पुनः वस्त्रों की ओर लपकती, बड़ी-बड़ी आँखों वाली यह नई-नवेली, रात बीत जाने पर सुबह-सुबह आईने में अपने को बार-बार निहार रही है, गुहार रही है।

७८

विरचितशुद्धिर्नियमितबालालङ्कृतनिजस्वरूपा च।
जनयति कस्य न लोभं हृद्या विद्येव सद्युवतिः।।

आचार-विचार और व्यवहार को शुद्धि प्रदान करने वाली, मूढ-बुद्धि बालकों को अनुशासित रखने वाली और मनुष्य के बाह्य एवं आभ्यन्तर स्वरूप को अलंकृत करने वाली विद्या और इस विद्या के समान वह सुन्दर युवती जो बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप से शुद्ध है, जिसके केशपाश संयमित हैं और जो अपने स्वरूप तथा यौवन को सदा अलंकृत रखती है, -किसे अपना लोभी नहीं बना देती ?

७९

अमृतात्मोदयमेष्यति कदा कदापैष्यतीह सन्तापः।
इति चिन्तयति नितान्तं कान्ता शान्तस्य वृत्तिरिव।।

नवोढा वधू और परमार्थ-साधक की चित्तवृत्ति एक सी होती है। अब देखिए ना - 'परम आनन्द का उत्स मेरा प्रिय कब आएगा? कब मेरा सन्ताप दूर होगा?'... प्रिय की प्रतीक्षा करती कोई नई-नवेली ठीक किसी योगी की शान्त चित्त-वृत्ति के समान ऐसा ही कुछ विचार कर रही है।

८०

रे मलयमारुत त्वं नूनं यमदूत एवासि।
यद्वा गरलज्वालाकल्लोलो यद्वियोगिनीं दहसि।।

आह मलय-मारुत! निश्चित ही तू यमदूत है या फिर भयङ्कर विष की कोई घनघोर ज्वाला जो मुझ वियोगिनी को यूँ दहका रहा है।

८१

नैजापावित्र्यादपि नपुंसकत्वाच्च मद्यमेवेदम्।
मन्ये बभूव सुरभिर्मधुत्वतो मूर्च्छयत्ययुक्तं यत्।।

अत्यन्त अपवित्र और नपुंसक-वृत्ति के कारण ही तो यह मद्य; मद्य हुआ, महकता सा; बिलकुल सड़ान्ध। भाई तभी तो यह अयुक्ति पूर्वक किसी को भी मदमस्त कर देती है; बिलकुल बेहोश!

८२

श्रुत्यन्तेक्षालङ्कृतिरसपदसद्वाक्यमानसंयमनम्।
प्रेयः प्राप्तिमृते किल विकलं सुदृशां न मानसंयमनम्।।

जब तक प्रिय की प्राप्ति नहीं होती काजल हो या सोलहो सिंगार; गहने; सरस, सुन्दर या मीठी बातों का दिलासा; अहह; यह सब के सब बिरहन के व्याकुल हृदय को तनिक भी शान्त नहीं कर सकते उसी प्रकार ज्यूँ परब्रह्म की प्राप्ति जब तक नहीं होती आगम-निगम आदि के सरस-सुन्दर वाक्य या उपदेश साधक के विकल मन को शान्ति प्रदान नहीं करते।

८३

उद्यानं तादृगिदं नक्षत्रेशोऽपि तादृशो जातः।
शिव शिव न वियोगिन्यां रूढैर्योगप्रकाशनं युक्तम्।।

आह; आज तो यह उद्यान भी ऐसा हो उठा है कि... और तीनों लोकों को परम विश्राम प्रदान करने वाले यह भगवान् चन्द्रमा भी कुछ और ही रूप धारित कर चुके हैं।... शिव-शिव! किसी वियोगिनी अबला के समक्ष यूँ संयोग के दारुण विभाव उपस्थित करना क्या युक्तियुक्त है ?

८४

रत्यागारद्वारं पश्यन्ती सा गतागतं तनुते।
विरचितसुमनःशय्या युवतिः सज्जनमतिश्चापि।।

चित्तवृत्तियों के नियमन से पवित्र मन को सेज की भाँति सजा कर कि प्रिय (आत्मज्ञान) का आगमन होगा; परमानन्द के उत्स (परब्रह्म) के द्वार देखती साधक की मति, प्रिय-मिलन की सतत आशा करती ही रहती है। ठीक उसी प्रकार जैसे -

नाना भाँति के पुष्पों से शय्या को अलंकृत कर, सुरत-आनन्द के स्रोत दरवाज़े की ओर झाँकती-ताकती तरुणी, बार-बार उस कमरे में जाती और द्वार पर आ शून्य को निहारती; प्रिय-मिलन की आशा में संलग्न रहती है।

८५

हरि हरि यद्यपि न मया रतिवैमुख्यं कदापि कृतमासीत्।
तत्रापि मानलेशभ्रान्त्या विमुखो न याति किं प्रेयान्।।

हरि हरि!; मैं तो सपने में भी कभी उनके प्रेम से विमुख न हुई!! कभी उनका प्रेम न छोड़ा, न तोड़ा!!! तो भी मुझ में मान-लेश का अनुमान कर प्रिय आज भी इधर नहीं आ रहे?

८६

किमसौ तु मानसीं मत्प्रतिमामेवोपभुज्य कृतकृत्यः।
नोपैति मां प्रियतमः सगुणध्यायीव शुद्धचितिम्।।

हाय रे दुर्भाग्य!... यह मेरा चाहने वाला भी कैसा जड है जो अपने मन में बसी मेरी मूरत को ही देख-छूकर कृतकृत्य हुआ जाता है! यह मैं लालसा भरी उसके अभिमुख; और वह है कि मेरी ओर देखता भी नहीं। ज्यों कोई सगुणोपासक मूर्ति को छोड़ स्वतः प्रस्तुत शुद्ध चिति (आत्म-तत्त्व) को जाने भी नहीं।

८७

यास्याम्यहं प्रदोषे सतीति पूर्वे मयि प्रतिज्ञाय।
यन्नैति तेन मन्ये प्रदोषशब्देन तस्य रज इष्टम्।।

प्रदोष; यानी सांझ होते ही मैं चला जाऊँगा' -पूर्व में ऐसी प्रतीज्ञा कर भी न तो यह सूर्य ही है जो अस्त हो रहा और न यह नायक है कि टल रहा!... तो क्या प्रदोष शब्द से सूर्य का आशय घनघोर अन्धकार और नायक को रजःस्राव से है?... भाई ज्ञानी के लिए तो प्रदोष तो प्रकृष्ट दोष ही है। ऐसे किसी दोष को देख; समझ कोई कैसे रुक सकता है भला?

८८

अगणितभूरिध्वान्तालङ्घितभोगीश्वराकलितशब्दा।
उत्तीर्णवार्षिकनदी याति प्रेयांसमङ्गना च मतिः।।

प्रिय-आसक्त युवति और प्रियपदार्थ-आसक्त मति, भीषणतम परिस्थितियों में भी अपने ईप्सित को प्राप्त कर ही लेती हैं। अब देखिये ना -

प्रिय ने बुलाया तो घटाटोप अँधियारे में, भयङ्कर सर्पों को भी लाँघती-फाँदती, उन्मत्त मेघों की भीषण गर्जनाओं को दरकिनार करती, अपने तटों को भेद चुकी और उफनायी नदी की धारा को भी पलटती युवती; प्रिय को मिल ही आती है।

८९

प्राणेश्वरेक्षणे सति यदि मानस्यावशिष्यते लेशः।
सुदृशस्तदाऽनुमेया विभ्रमता तत्र किं न दृढा।।

प्रिय सामने खड़ा हो और तरुणियों में मान?... प्रियतम के सामने होने पर भी यदि युवतियों में मान का बोध रह जाए तो समझिये कि यौवन के विलास और विभ्रम अभी पूर्णतः या तो आए नहीं और यदि आ गए तो अभी दृढ नहीं हुए हैं।

९०

प्रेयसि पदेऽपि विलुठति तरलितदृष्टिर्जहाति नो मानम्।
तार्किकमतिरिव युवतिर्विभ्रान्तेरेव परिपुष्ट्यै।।

तर्कशास्त्री की बुद्धि और युवति; दोनों ही प्रत्यक्ष में संशय और अनुमान में विश्वास रख कष्ट ही उठाते हैं।

उधर देखिए - अनेक शपथों और अन्ततः स्वयं के पैरों पर प्रेमी के गिर चुकने के बावजूद डबडबाई आँखों वाली वह तरुणी अभी भी क्रोध नहीं छोड़ रही। नहीं छोड़ रही कि यह मान (अनुमान) उसके उस भ्रम को पुष्ट करता है, कि - 'अधम किसी दूसरी का सम्भोग कर आया है।'

९१

यावन्न हार्दवसनग्रन्थेर्भेदोऽस्ति तावदेवेह।
माने प्रवृत्तिरास्ते वाणीनामिव तु रमणीनाम्।।

गाँठ; चोली की हो या हृदय की, जब तक नहीं खुलती अभिमान रहता ही है। एक बार जो गाँठ खुली तो कैसा मान और कैसा अभिमान?

अब देखिए ना - स्तनों पर पड़ी चोली की गाँठ जब तक नहीं खुलती तभी तक स्त्रियों में क्रोध रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे अज्ञान रूपी गाँठ जब तक न टूटे व्यक्ति की वाणी में अभिमान रहता ही है।

९२

अन्योऽन्यगुणनिबन्धनकर्षण-सञ्ज्ञातपुलकयोर्यूनोः।
समकालकलितगलयोर्दोर्भ्यामालिङ्गनं जयति।।

एक दूसरे के गुणों से परस्पर आबद्ध, एक दूसरे के प्रति आकृष्ट, रसावेग से रोमाञ्चित और समकाल में एक दूसरे के हृदय का भावाविद्ध अवलम्बन लेने वाले प्रेमी-युगल का पारस्परिक वह आलिङ्गन विजित, अजर और अमर रहे।

९३

विकसितपद्मे हंसौ प्रफुल्लकुमुदेऽथवा चकोरौ किम्।
तल्पे श्रीहरिकल्पौ जयतः शुभदम्पती कौचित्।।

शय्या पर अठखेलियाँ करता दम्पति/ जैसे विकसित कमलों के मध्य हंस-युगल हों गतिमान्/ जैसे प्रफुल्ल कुमुदों के बीच; चहकता चक्रवाक-मिथुन/ शेष पर क्रीडारत श्री और हरि समान/ शय्या पर अठखेलियाँ करता दम्पति/ अजर रहे/ अमर रहे।

९४

शिवभक्तिमिव विरागः शान्तिमिवात्मा सुयुक्तिमिव बोधः।
आश्लिष्य नैजतरुणीं गुणपूर्णः कोऽपि सुखमेति।।

कृतकृत्य होता प्राप्त कर, वैराग्य ज्यों शिवभक्ति को, आत्म-तत्त्व ज्यों शान्ति को, औ' बुद्धि ज्यों शुभ युक्ति को, त्यों सुभग सौभाग्य-धन, इहलोक औ' परलोक-दुर्लभ, प्राप्त करता सुख कोई, निजनववधू-आश्लेष पाकर।

९५

सम्पूर्णामृतवपुषा कलावता द्विजवरेण शुचिभासा।
रमते श्यामा किमियं नहि नहि निजपद्मिनी कापि।।

षोडश-कलाओं युक्त, किरणें निर्मल हिम-से शीत, सुधा सम देह गात्र नवनीत, चन्द्रमा सङ्ग क्रीडासक्त, रुचिर-रति-क्रीडा-रङ्ग-प्रसक्त, करती जड-चेतन को तृप्त, क्या यह रजनी रति-रस-दृप्त? ना-ना-ना... यह प्रेयसी निज सन्तृप्त।

९६

श्रुत्योक्तं सर्वेषामानन्दानां यदायतनममृतम्।
तत्सुखमास्वादयतोर्जायापत्योः क्व भेदभानं स्यात्।।

क्षण भर के लिए भी जहाँ द्वैत का भान नहीं रहता, श्रुतियों के बताए सब आनन्दों के सिरमौर, अमृत सम परमानन्द का आस्वाद करते दम्पति में, भेद का भान हो भी तो कहाँ से?

९७

वात्स्यायनादिमुनिभिः कथितो योऽभूत्तृतीयपुरुषार्थः।
स तु समसकलगुणवतोः सततं सीमन्तिनीसुशीलधियोः।।

यूँ तो काम; जीव-मात्र में पाया जाने वाला अपरिहार्य तत्त्व है, लेकिन वात्स्यायन आदि मुनियों ने पुरुषार्थ के रूप में जिस काम-तत्त्व का उपदेश किया वह काम; - चतुर्विध पुरुषार्थों में अन्यतम, अनन्यतम काम, समान गुण धारित करने वाले परस्पर अनुरक्त दम्पति; सती पत्नी और सुबुद्धि पति को ही प्राप्त होता है।

९८

विरचितकुरङ्गभङ्गः श्रुतिकृतसङ्गः सुजीवितानङ्गः।
सौन्दर्याब्धितरङ्गः कस्य न सुमुदेऽङ्गनाऽपाङ्गः।।

मृग-शावक से चञ्चल नयनों की भङ्गिमा, अपनी चञ्चल चपलता से जड को भी चेतन कर देने की लोकोत्तर कला, सौन्दर्य-समुद्र में उठने वाली लहरों के समान निम्नोन्नत सञ्चार वाले युवतियों के ये अपाङ्ग, ये कटाक्ष, अहह;... किसे न मदहोश कर दें!

९९

राकानायकवदना तारागणचारुमौक्तिकाभरणा।
संयमिततिमिरचिकुरा स्वकामिनी यामिनी जयति।।

साक्षात् चन्द्रमा जिसका मुख और चमचमाते मोतियों से तारे ही जिसके आभरण हैं। निबिड अन्धकार जैसे केशपाशों को संयमित रखने वाली रात्रि और अपनी प्रेयसी; दोनों का ही सौन्दर्य अक्षुण्ण रहे, अखण्ड रहे।

१००

अणुमात्रभेदसत्त्वे वियोगभयतः सदैव संमिलतोः।
पात्वनुरागः प्राञ्चोरानन्दश्चाभिनवयुवयोः।।

अणुमात्र भी भेद भीषण वियोग उत्पन्न कर सकता है, इसी वियोग-भय से सदा ही परस्पर सम्पृक्त रहने वाले सृष्टि के आदि प्रेमी-युगल शिव-पार्वती और सृष्टि के अन्तिम प्रेमी-युगल का वह अनुराग आप लोगों की रक्षा करे।

।। इत्यच्युतविरचिताद्वैतमञ्जर्यां रतिमुकुलोऽयमलङ्कृतः। शिवम्।
। श्रीगुरुचरणार्पणमस्तु। श्रीरस्तु। सम्पूर्णः। समाप्तः।।
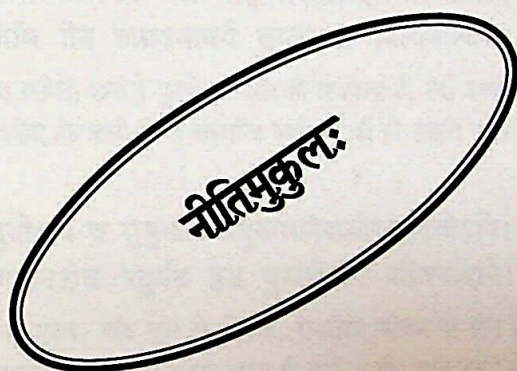
अच्युतरावमोडकविरचितायाम् अद्वैतामृतमञ्जर्यां

नीतिमुकुलः

श्रीशं वन्दे।

१

जडभोगियोषितां यः सङ्गवशात्तत्तदर्थतां यातः।
तन्नौमि तेन तत्राऽनाप्त्यै तृप्त्यै च नित्यनीत्यैव।।

ज्यौं भौंरा रसीले; छबीले फूलों की ओर ही लपकता है, त्यौं अपना हित चाहने वाले को भी चाहिए कि ज्ञानी किन्तु सच्चरित्र व्यक्तियों की ही सङ्गति करे।

२

सद्वृत्तोऽपि च सुमुखोऽप्यमृताधानैकयोग्यहृदयोऽपि।
गुणहीनश्चेन्न पटुर्घट इव पुरुषोऽपि जीवनादाने।।

घट हो या पुरुष, यदि गुण से हीन है; समझिए जीवन से हीन है!... व्यक्ति कितना भी सदाचारी और सुन्दर हृदय वाला ही क्यों न हो, यदि गुणों से हीन है तो जीवन का सार प्राप्त करने में उसी प्रकार अयोग्य हो जाता है ज्यों गोल, सुडौल, सुन्दर, अमृत को भी स्वयं में समाहित रख सकने वाला घट रस्सी के बिना जल को खींच सकने में असमर्थ होता है।

३

सद्वंशजोऽपि सरलोऽप्याश्रितवीरोऽपि यदि न गुणशाली।
नैति पुमान्नम्रत्वं कोटिद्वितयेऽपि चापदण्ड इव।।

अज़ी यह गुणों की ही महिमा है कि बड़े से बड़े वंश में उत्पन्न, करोड़ों का स्वामी, सरल, वीरों के आश्रय में रहने वाला भी पुरुष यदि गुणहीन है तो उसी प्रकार विनम्र नहीं होता ज्यों अच्छे बाँस का बना, सीधा-सादा, दोनों किनारों से सजा, वीरों के हाथ पड़ा भी धनुष बिना डोर के झुकता नहीं।

४

अवलम्बितविष्णुपदः कर्षितजनचक्षुरतुलदीर्घमूर्ध्वपादगतिः।
पत्रमयोऽपि पदार्थः पतङ्गतामेति गुणयोगात्।।

गुणों की कुछ और सुनिए!... यह गुण ही हैं कि जिनसे विभूषित साधारण से साधारण भी व्यक्ति महान् हो उठता है, इतना महान् कि विष्णु-स्थानीय हो जाता है। दुनिया भर की निगाहें उस पर जा-जा ठहरती हैं। ऊपर ही ऊपर तेज़ी से उठता जाता है। ठीक काग़ज़ से बने पतंग की भाँति जो रस्सी से बंधा एक बार जो उड़ा तो उड़ता ही चला जाता है, लोगों की आँखें चुराता, अनन्त आकाश में।

५

कण्ठादधोऽति तन्वी शिरसि तु बृहतीति निन्द्यरूपापि।
हरति मनो निपुणानां वीणा गुणवत्त्वयोगेन।।

वीणा; ग़ौर से देखिए तो क्या बदसूरत सी शक्ल पाई है इसने। कण्ठ से नीचे पतली तो ऊपर यह बड़ी गोल-मटोल। लेकिन आवाज़?... भाई वाह!... अपने इसी एक मात्र गुण से ही यह सुनने वालों के दिलो-दिमाग़ को अपने वश कर लेती है।

६

विमलानां शुभ्राणां सद्वृत्तानामपीह मुक्तानाम्।
न भवत्यैक्यं भवति च रन्ध्रप्राकट्यमेव गुणविरहे।।

साधक कितना भी अन्तःकरण से शुद्ध हो, पवित्र हो, आचार-विचार परिपूर्ण हो लेकिन यदि सत्त्वादि गुणों से रहित है; समझिए कैवल्य से उसकी एकता तो दूर बल्कि उसके दुर्गुण भी उसी प्रकार प्रकट हो उठते हैं ज्यों शुद्ध, चमकती और अच्छे आकार-प्रकार वाली मोती धागे के अभाव में गुँथने से तो दूर रही, बल्कि उसमें पड़े छेद प्रकट हो आते हैं।

७

सौरभ्यभारभरिताः सरसाः शुचयोऽपि सुमनसो यदि चेत्।
गुणविच्युतास्तदानीं पतन्ति पादेषु परिलुठिताः।।

वाह रे गुण और इनका महत्त्व! अब देखिए ना; फूल चाहे कितने भी सुगन्धित, सरस, सुन्दर और पवित्र क्यों न हों, -यदि धागे से छूटे तो सीधा व्यक्ति के पैरों पर आ गिरते हैं। व्यक्ति कितना भी विद्वान्, आचार-विचार सम्पन्न; सरस और सुन्दर क्यों न हो, यदि उसमें कुछ गुण नहीं तो दूसरों की कृपा पर आश्रित तो रहना ही पड़ता है।

८

सुस्निग्धा अपि सततं सुमनःसङ्गैः सुवासिता अपि च।
अकलितगुणावलम्बाः कौटिल्यं प्रकटयन्ति किल बालाः।।

बच्चे हों या बाल; बांधे न रखो तो अपनी कुटिलता प्रकट कर ही देते हैं। बाल हैं कि चाहे जितना तेल चुपड़ लीजिए, चिकने-मुलायम रखिए और नहीं तो फूलों के गजरों से सजाए-महकाए रखिए यदि इन्हें बांधे न रखा तो अपना टेढापन उसी तरह प्रकट कर देंगे ज्यों लाड़-प्यार औ' दुलार से पाले-पोसे, फूलों से गमकते किन्तु किसी भी प्रकार के गुण से विहीन बच्चे।

९

सुस्निग्धोऽप्यतिशुद्धः स्वयम्प्रभः क्षान्तहृदयभेदोऽपि।
सन्निधिसंग्रहपटुरपि हततिमिरोऽप्यगुण इह मणिर्न हृदि।।

रत्न चाहे कितने भी साफ़-सुथरे, चमकदार, हृदय का भार सहने वाले, धारण-संग्रह के योग्य और अन्धेरे को भी मात देने वाले क्यों न हों; यदि गुण (धागे) से न बंधे हों तो धारण नहीं किए जा सकते। व्यक्ति; भले इन मणियों सा ही मूल्य और महत्त्व का क्यों न हो, अगुण है तो किसी के हृदय में स्थान नहीं पा सकता।

१०

सुदृशः कण्ठे धृतमपि सौभाग्याभरणमप्यनर्घ्यमपि।
क्षणमपि गलितगुणं किल दूरीकुर्वन्ति पद्मरागमपि।।

स्त्रियाँ सौभाग्य-सूचक आभूषण को, इनमें पड़े पद्मराग सरीख़े क़ीमती रत्न को भी गुण-विच्छिन्न होने के कारण अपने ही हाथों अपने कण्ठ से उतार फेंकती हैं। इन आभूषणों और इनमें पड़े रत्नों की तरह ही व्यक्ति भी चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण और महान् क्यों न हो, एक क्षण के लिए भी गुणों से चूका तो अपने ही चाहने वालों के हृदय से उतार फेंका जाएगा।

११

श्रुतिसन्ततभूषणत्वं गता दृशालिङ्गिताश्च बत भूयः।
मुक्ता अपि विगतगुणा अधः पतन्तीति चित्रमिदम्।।

झुमकों में बिँधे सदा ही कानों के आभूषण हो कर रहने वाले और बड़ी-बड़ी आँखों औ' उनके चितवनों का आनन्द लेने वाले मोती भी गुण (धागे) से अलग हुए ज़मींदोज़ हो जाते हैं। हाय; क्या ही महत्ता है इन गुणों की!... कि वेद-वेदाङ्गों के श्रवण-मनन-चिन्तन रूपी नित्य आभूषण वाले और अपने ही ज्ञानचक्षुओं के आलिङ्गन में सदा लीन रहने वाले मुक्त साधक भी सत्त्वादि गुणों के विगत होने पर अधःपात (मृत्यु) प्राप्त करते हैं।

१२

अधरस्तनजघनमपि प्राप्ता मणयो यदैव वीतगुणाः।
सुदृशस्तदैव विरहं प्रयान्ति किल दर्शयन्ति छिद्रमपि।।

हाय-हाय; बड़े से बड़ा व्यक्ति भी जब अपने गुणों से रीतता, चुकता है; अपने ही चाहने वालों से न केवल दूर हो जाता है बल्कि अपने उस कुत्सित रूप को भी प्रकट करता है जो अब तक अनदेखे थे। युवतियों के आभूषणों में पड़े इन रत्नों को ही देखिए -

अपनी चमक-दमक और बेशक़ीमती के कारण सुन्दरियों के होठों से चूमे, जाँघों से हिचकोले खाते और स्तनों से टकराते भी रत्न धागे से अलग होते ही पहले तो उतार फेंके जाते हैं, तिस पर इनका कुत्सित रूप वह छिद्र भी प्रकट हो आता है।

१३

आयाते सति सुरभौ प्रायो गुरवस्तथैव लघवोऽपि।
विकसन्ति शाखिनः खलु न तु पाषाणाः कदाचिदपि।।

वसन्त के आने पर छोटे-बड़े सब के सब वृक्ष फूलों से महमहा उठते हैं, पत्थर नहीं! अजी अवसर की पहचान तो उन्हीं को हो सकती है जो शाखाओं से युक्त हों। ज्ञान-विज्ञान की कई शाखाओं से युक्त किसी गुणी व्यक्ति की तरह। वर्ना किसी जड पत्थर से मूर्ख व्यक्ति का वैसा विकास देखा है?

१४

गृहणन्तु पञ्चशाखद्विजास्तु तच्चर्वयन्त्वथापीह।
ज्ञातुं वक्तुं च रसं निपुणा मृदुला रसज्ञतां यान्ति।।

अजी पाँच क्या आप हज़ार शाखाओं के ज्ञाता हो रहिए, इन शाखाओं के प्रतिशब्द; प्रत्यक्षर चबाते रहिए, वेद हों या शास्त्र इनके रस का ज्ञान और इनका उपदेश तो कोई सरल हृदय रसिक व्यक्ति ही कर सकता है! हाथी के बाहरी दाँत इक्षु-वन को लाख रौंदे-उजाड़ें, चूसें-चबाएँ तो क्या वह इसके रस को भी जान लेंगे, दूसरों पर ज़ाहिर कर सकेंगे।

१५

यद्यपि कर्णे जपति क्वणितैरधुना तथापि परिणामे।
रुधिरं पास्यति दंशं विधाय पिशुनश्च मशकश्च।।

हालाँकि बड़ी मीठी आवाज़ में अभी कानों के पास स्तुति-गायन कर रहा है, मगर पिशुन हो या मच्छर; अन्ततः डसेगा ज़ुरूर और डस कर ख़ून भी चूसेगा ही। इसलिए ऐ भाई मच्छरों की ही भाँति इन पिशुनों; चुग़ुलख़ोरों से भी बच कर रहो, इन्हें दूर रखने का उपाय करो!

१६

निजहृदि कामाग्निशतज्वालाजालेन चिरं सुतप्तेऽपि।
तनुते न वृत्तभङ्गं सैव हसन्तीह जाड्यमपहन्ति।।

हाय वृत्त; याने शील और चरित की रक्षा करना तो कोई युवतियों से सीखे!

देखिए ना;... प्रियविरह में कामाग्नि की धधकती ज्वाला से जल कर राख हुए हृदय में भी युवतियाँ अपने शील को कथमपि भङ्ग नहीं होने देतीं (अपने स्तनों की ऊँचाई और गोलाई को कभी गिरने नहीं देतीं) बल्कि हँसती हुईं इस जडता को स्वयं से दूर रखतीं हैं।

१७

क्षणमपि परतरुणीक्षणमिष्टेच्छुर्मा करोतु कुत्रापि।
अतिविमलोऽप्यादर्शस्तत्सम्पर्केण चुम्ब्यते पुरुषैः।।

यदि आप अपना हित चाहते हो तो याद रखना कि कभी और कहीं भी परायी स्त्रियों की ओर नहीं देखना। हाय-हाय; परायी स्त्रियों के देखे का परिणाम इससे बुरा और क्या हो सकता है कि आईनों में इनकी परछाईं भर देख लेने वाला पुरुष अपनी सुध-बुध ऐसा खो बैठता है कि उन साफ़-सुथरे आईनों को ही चूमने-चाटने लगता है।

१८

क्षणमपि चेत् परतन्त्रः सीदत्येवातुलं महानपि च।
अद्यावधि बत कुरुते हरिः प्रतीहारतां बलेर्द्वारि।।

व्यक्ति कितना भी महान् क्यों न हो यदि क्षण भर के लिए भी किसी बलवान् या धनवान् का परतन्त्र हो तो जीवन भर के लिए उसे दुःखी रहना ही पड़ता है। अब देखिए ना; विष्णु आज भी राजा बलि के दरवाज़ों पर चौकीदार के बतौर प्रसिद्ध हैं।

१९

येषां प्राणानुचरो भवति विचारस्त एव किल चतुराः।
किं स्वप्रकाशरत्नं त्यजति ज्योतिः स्थालस्य विरहेऽपि।।

विचार; जिनके प्राणों के पीछे-पीछे चलने वाले होते हैं, प्राण-पण पर भी अपने सद्विचार का परित्याग नहीं करते, वास्तव में वही चतुर हैं। थाली या कुछ और आधार रहे ना रहे, ज्योति क्या कभी अपने प्रकाश रूपी रत्न को छोड़ती है?

२०

व्यथयति यथा यथाऽहो खलः शुचास्ते तथा तथा विमलाः।
रसिकास्वाद्याश्च तूष्णीमेवास्य तु मुशलतण्डुलवत्।।

नीच ज्यौं-ज्यौं सज्जन को सतावें, उन्हें कष्ट दें त्यौं-त्यौं सज्जन निखरता, निथुरता जाता है। ठीक उस प्रकार ज्यौं ओखली में पड़े धान चुपचाप मुसलों के वार सहते रहते हैं और एक समय ऐसा आता है कि निखर-निथुर कर रसिकों के आस्वाद योग्य चावल के रूप में परिणत हो उठते हैं।

२१

अतिचपलाञ्जनमलिना नैकालम्बा प्रतिक्षणं तूला।
क्षोभाय कस्य न भवेद्राजप्रकृतिश्च युवतिदृष्टिश्च।।

अत्यन्त चपल-चञ्चल, काजल-पुती, किसी एक पर न ठहरने वाली और क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती युवतियों की दृष्टि और इस दृष्टि सी शासन की प्रकृति कौन है जिसे क्षुब्ध नहीं कर देती।

२२

पिशुनाच्छुन इव रक्ष्या तरुणी वाणी तथैव गृहहरिणी।
प्रतिवादिनोरदिन इव श्रुतिर्मतिश्चारुयुक्तिरिव।।

नीचपुरुष-रूपी कुत्तों से घर की बहू-बेटी, वाणी और घर में पली-बढी हिरनी की रक्षा उसी प्रकार करनी चाहिए ज्यों झगड़ते लोगों के दुर्दिन से अपने वेद, बुद्धि और सुन्दर युक्तियों की रक्षा की जाती है।

२३

अत्यवहितेन भाव्यं महतां सविधे निवासिना सुधिया।
हारः स्तनमध्यस्थो न त्रुटति रते तदूर्ध्वगस्त्रुटति।।

व्यक्ति चाहे कितना भी विद्वान् या गुणवान् क्यों न हो, स्वयं की अपेक्षा बड़ों के सम्पर्क में रहे तो चाहिए कि अत्यधिक सावधान और सतर्क रहे। अब देखिए न; हार स्तनों के बीच ही रहे तो कभी नहीं टूटता लेकिन मूर्ख स्तनों के ऊपर आता है तो (आलिङ्गन में) छिन्न-भिन्न हो ही जाता है।

२४

अल्पधियाऽप्यल्पधियोऽवहेलयन्ति क्षणं सुनिपुणमपि।
घनगर्जितमनुभेका रटन्ति तत एव जीवनं लब्ध्वा।।

मूर्ख अपनी तुच्छ-बुद्धि के कारण तुरत ही बड़े-से-बड़ों की भी अवहेलना कर देते हैं। हाय रे; ज़रा इन मेढकों को तो देखिए! जिन बादलों ने इन्हें जीवन (जल) दिया उनकी गर्जना सुनते ही लगे यह भी टर्राने-गुर्राने!!...

२५

शिव शिव महता नीचः प्राणान्तेऽप्यल्पमपि न सम्प्रार्थ्यः।
मुखकार्ष्ण्यमर्दनक्षतपतनेऽपि कुचौ न हारसञ्छन्नौ।।

प्राण भले ही चले जाएँ किन्तु व्यक्ति को चाहिए कि नीच-पुरुष से कुछ नहीं माँगे। युवतियों के स्तनों को देखिए - हाय-हाय; मुँह काला पड़ गया था, निर्दयता से मसले और नोचे-खसोटे गए थे, निढाल लटक गए थे लेकिन नीच हारों ने उनकी प्रार्थना के बावजूद उन्हें बचाया-छुपाया नहीं बल्कि और उकसाया प्रिय के हाथों को।

२६

द्विजपूज्यैरपि तावत्कलङ्कितस्यापि पादतो दोषी।
सह्यतयैव तु सह्यो यावन् मित्रोदयो भविता।।

सावधान!... कलङ्कित चन्द्रमा की किरणों का पड़ना भी श्रेष्ठ आचार-विचार वालों के लिए एक दोष ही है। किन्तु, चूँकि यह दोष दुर्निवार होने के साथ-साथ कथमपि सह्य भी है अतः ज्ञानी इसे तब तक सहन करे जब तक कि अगली सुबह सूर्य की प्रकाश-किरनों का उदय नहीं हो जाता।

२७

पापे प्रवर्तमानोऽप्युपेक्ष्य एवाश्रयी बली नीचः।
नहि मातरमपि रन्तुं वृषः प्रवृत्तो निवार्योऽस्ति।।

बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि बली और नीच आश्रयदाता को पाप में प्रवृत्त देख कर भी उसकी उपेक्षा करे। अपनी ही माता से सहवास पर उद्यत साँढ को भला समझाते-बुझाते हैं? उसे रोकते हैं?

२८

यद्यपि दैवान्नीचो गुणवाञ्जातस्तथापि सुधियासौ।
निजजीवनसम्प्राप्त्यै घट इव पार्थिवतयैव संसेव्यः।।

भाग्य की बात है कि नीच-पुरुष गुणवान् हो गया, किसी काम का हो गया। लेकिन बुद्धिमान् को चाहिए कि अपना जीवन-चक्र सुचारु रखने हेतु ऐसे नीच-पुरुषों की सहायता सावधानी-पूर्वक उसी प्रकार ले जैसे धूल-मिट्टी से बने घड़े से जल।

२९

प्रत्युत्तरं न देयं प्राणान्तेऽप्यूहनं विना विबुधैः।
घनगर्जनेऽपि जाते विना वसन्तं न कोकिलो रौति।।

विद्वान् व्यक्ति को चाहिए कि बिना सोचे-बिचारे, बिना तर्क की कसौटी पर कसे किसी को भी उत्तर या प्रत्युत्तर न दे। अजी बादल लाख गरजें, बिना वसन्त आए कोयल कभी नहीं कूकती।

३०

अधिकारेऽपि न विबुधैः परोऽपि निर्भर्त्स्यं ईषदपि जातु।
शिरसश्छेदादपि वागधिकं व्यथयति न सूक्ष्मवेधित्वात्।।

यद्यपि तत्परक पद और अधिकार प्राप्त हो परन्तु बुद्धिमान् को चाहिए कि अपने शत्रुओं को भी कटु-वचनों से आहत न करे। क्योंकि यह वाणी है जो मर्म को बींधने के कारण सर काट दिए जाने से भी अधिक और असह्य वेदना प्रदान करती है।

३१

देशं कालं शक्तिं सहायमपि वीक्ष्य येऽनुवर्तन्ते।
तेषामेवेह जयः पाण्डववत् सर्वपुरुषार्थैः।।

देश, काल, शक्ति एवं अपनी सहायता को सोच-समझ और परख कर अपने समस्त पुरुषार्थ के साथ जो व्यक्ति कार्य में प्रवृत्त होते हैं, पाण्डवों के समान विजय उन्हीं को प्राप्त होता है।

३२

मित्रमयं दूषयतीत्येतावन्मात्रतो न रोषी स्यात्।
तस्योदयसमये सत्यसौ दिवाभीत इव निलीयेत।।

अपने प्रिय व्यक्ति या मित्र की निन्दा करने मात्र से ही निन्दक पर क्रोध नहीं करना चाहिए क्योंकि जब उसके दिन बहुरेंगे, देखना उस दिन यही निन्दक उससे यूँ भागा फिरेगा ज्यों सूर्य के उदित होते ही उल्लू अँधेरी गुफाओं में भागते-फिरते हैं।

३३

कोपोऽपराधशालिन्यपि च न युक्तः क्षतः स तेनैव।
यस्मात् सर्वत्रापि क्षते प्रहारो न वीरधर्मोऽस्ति।।

व्यक्ति कितना बड़ा भी अपराधी क्यों न हो उस पर क्रोध क़तई न करना चाहिए। अजी वह तो अपने अपराधों से ही क्षत-विक्षत हुआ पड़ा है। अब ऐसे क्षत-विक्षत किसी निरीह पर क्रोध-रूपी प्रहार तो वीरों का धर्म नहीं!...

३४

यद्यपि मूर्खः सरलं निर्भर्त्सयति तदपि तेन तत्प्राश्यम्।
नहि भेकप्रतिवचनं कुरुते किल कोकिलः क्वापि।।

यह मूर्ख ही हैं जो अपनी मूर्खता के कारण किसी को डाँट-फटकार देते हैं, कटुवचन बोलते रहते हैं किन्तु बुद्धिमान् को चाहिए कि उसके मुँह न लगे। अब देखिए न मेढक लाख टर्राएँ - गुर्राएँ, कोयल कभी उसे प्रत्युत्तर नहीं देती।

३५

उपजीवनाय परगृहवसद्द्विजानां क्षतिर्विवेकमृते।
पद्मिन्याद्यासक्तेर्दृष्टा मधुपेषु न तु मरालेषु।।

पराए घर जीवन-निर्वाह करते बुद्धिमान् को चाहिए कि भले सब कुछ नष्ट हो जाए मगर अपने विवेक को क़तई नष्ट न होने दे। अजी बात यह है कि बड़े से बड़े ज्ञानी-पण्डित भी जिसके लिए अपना विवेक नष्ट कर लेते हैं वह सुन्दरियाँ इसी विवेक पर तो मुग्ध होती हैं। नहीं समझे?... भौंरे और राजहंस दोनों ही अपने जीवन-निर्वाह हेतु तालाब में रहते हैं। लेकिन लबालब भरे तालाब में इठलातीं, बलखातीं कमलिनियाँ विवेक-भ्रष्ट भौंरों पर नहीं; विवेकी राजहंसों पर ही रीझती हैं।

३६

यावन्न शारदागमकालस्तावत् प्रतापसङ्कोचः।
त्रय्यात्मनापि लोके क्रियते किल का कथाऽन्येषाम्।।

व्यक्ति और उसकी प्रभुता बड़ी नहीं होती बल्कि समय बड़ा होता है। अब देखिए ना - जब तक शरद् ऋतु नहीं आ जाती तब तक विश्वात्मा भगवान् सूर्य भी अपने तीव्र ताप से बाज़ नहीं आते। भाई उनका समय जो ठहरा! लेकिन जब शीत ऋतु के आते ही?... जब विश्वात्मा सूर्य की यह स्थिति है तो फिर प्रभुता-सम्पन्न दुरात्मा व्यक्ति का क्या कहना?

३७

निजवीर्यपात्रमेव ज्ञात्वा सुधिया पराक्रमः कार्यः।
नो चेत्फलं तु दूरे पातित्याप्तिस्तु तत्क्षणं भूयात्।।

पराक्रम से पूर्व बुद्धिमान् को चाहिए कि प्रथम भली-भाँति यह विचार ले कि विषय उसके वीर्य (पौरुष) के उपयुक्त भी है या नहीं? अन्यथा इस पराक्रम का फल तो दूर; पातकी होने का फल उसे तत्क्षण प्राप्त हो जाएगा।

३८

बलिसंस्पर्द्धः किञ्चित्कालं स्तब्धः समुन्नतोऽप्यन्ते।
असितमुखो मर्दनतः क्षतश्च कुचभारवत् पतति।।

दुर्जन को चाहिए कि वह जैसा है वैसा ही अपने में सन्तुष्ट रहे, किसी से स्पर्द्धा न करे। वर्ना यह काले मुँह वाले; युवतियों के स्तनों की भाँति मसले ही जाएँगे।

अब देखिए - स्वयं की अपेक्षा बलवान् से स्पर्द्धा करते, एकदम से स्तब्ध, विशिष्ट प्रकार की उन्नति को प्राप्त भी दुर्जन प्रतिस्पर्द्धा के चक्कर में; पुरुषों के विशाल वक्षःस्थल और हाथों से प्रतिस्पर्द्धा करते युवतियों के श्याम-मुख, उन्नत औ' सुडौल स्तनों की भाँति अन्ततः निर्दयता पूर्वक मसले ही जाते हैं, क्षत-विक्षत किए ही जाते हैं।

३९

हरिरपि वारणशिरसि प्रेक्ष्य विमुक्तोच्छ्रयं शमं याति।
कैव कथात्र नराणां तत्त्वद्धीनाः खरा एव।।

हाथी को मुक्ता-मणि विहीन और मद-घट शून्य देख कर सिंह; जो कि निरा पशु है, -कभी उस हाथी पर वार नहीं करता। हाय रे; फिर बुद्धिमान् मनुष्यों की तो बात ही क्या? वे क्यों किसी सामर्थ्यहीन पर वार करें? और यदि करें तो पौरुष-प्रदर्शन के स्थान की पहचान से हीन बिचारे गदहे क्यों न कहलाएँ?

४०

अङ्के हरिणकिशोरं दधता सोढा कलङ्किताऽपि तथा।
सिंहीसुतकृतनैजग्रासोऽप्यमृतात्मना द्विजेन्द्रेण।।

शरणागत-रक्षा सीखनी हो तो कोई चन्द्रमा से सीखे!... मालूम नहीं कहाँ का भटका कोई हरिण-किशोर बिचारे की गोद जा बैठा। अब यह हैं कि अनन्त काल से उसे गोद बिठाए भए हैं। भाँति-भाँति के कलङ्क उठाते फिर रहे हैं, हिरन के स्थान पर स्वयं सिंहीसुत राहु द्वारा निगले भी जाते हैं; लेकिन शरणागत की रक्षा नहीं छोड़ते।

४१

दैवान्निजगृहमाप्तः कदापि विद्वान्नरैर्न समुपेक्ष्यः।
किं कमलैरलयो निजकोशेऽप्यनिशं न संनिवेश्यन्ते।।

व्यक्ति को चाहिए कि सौभाग्य से स्वयं के द्वार उपस्थित विद्वान् का निरादर न करे। भौंरे चाहे जब दस्तक दें, कमल के फूल बिना समय की पड़ताल किए उन्हें अपने पराग के भण्डार में स्थान देते हैं।

४२

पात्रं विनोपदेशः प्रत्युत नाशावहो भवति।
कलमाकलय्य काकाः कोकिलमपि किल निहन्तुमुद्युक्ताः।।

बुद्धिमान् को चाहिए कि अपात्र को कभी कोई उपदेश न करे। क्योंकि ऐसा कोई उपदेश स्वयं उसी के विनाश का कारण बन सकता है। अब देखिए ना; उपवन में कोयल ने पञ्चम सुर उठाया। इस आशय से कि समूचा उपवन स्वर-झंकृत हो उठेगा। लेकिन निकट ही कौव्वों का झुण्ड भी था। तान सुनते ही झट उसी पर झपट पड़े।

४३

दुन्दुभिरपि ताडनतोऽप्यतिधीरध्वननमेव यत्तनुते।
तदिह कथं न विपश्चिन्मधुरं प्रवदतु पराक्रोशे।।

मृदङ्ग; बिचारा निश्चेतन और पूर्णतः जड। निष्कारण भी आघात करो तो धीर-गम्भीर और सुन्दर ध्वनि ही उत्पन्न करता है। तो जो बुद्धिमान् हैं; विद्वान् हैं, वह भला किसी के दुर्व्यवहार से आक्रोशित हो कटु-भाषण कैसे कर सकते हैं?

४४

परहिंसा तु स्वप्रेयात्महितायैव नो नृभिः कार्या।
नहि घातुकाः कदाचिद्विहरन्ते क्वापि सर्पाद्याः।।

अपने सुख या हितमात्र के लिए मनुष्य को परहिंसा नहीं करनी चाहिए। अब देखिए ना; साँप से अधिक घातक भला कौन प्राणी होगा? किन्तु वे परहिंसा हेतु ही व्यर्थ इधर-उधर नहीं भटकते फिरते!

४५

श्रीसोदरोऽपि शुचिरपि विष्णुकरे संस्थितोऽपि विशदोऽपि।
क्षीरोदजोऽपि कम्बुः स्वातः कौटिल्यतः शङ्खः।।

लाख जतन कीजिए कुटिल अपनी कुटिलता नहीं छोड़ सकते।... अब देखिए ना शङ्ख को! कितना पवित्र, निर्मल, क्षीरसागर से उत्पन्न, लक्ष्मी का छोटा या बड़ा भाई होगा; और साक्षात् भगवान् नारायण के हाथों में ही रहा करता है। किन्तु कुटिलता ने इसे कहीं का न छोड़ा। बिचारा शङ्ख के शङ्ख ही रहा। वर्ना देवत्व तो इसमें था ही।

४६

हृत्वा तमोऽपि सदंशं प्रकाशमनुनीय सर्वतः स्नेहम्।
दीप कथं कज्जलमिदमुद्गिरसि त्वं निसर्गसन्तापात्।।

दीप!... यूँ सबसे स्नेह प्राप्त कर, अन्धकार को मिटा और सत्त्व के अंश प्रकाश को चहुँ ओर फैला कर अब अन्त में इस प्रकार मलिन काजल क्यों उत्पन्न करते हो? अनन्त सन्ताप सहन कर प्रकाश फैलाना ही तो तुम्हारी नियति है भाई!

४७

अन्तर्गतापि विद्या सौरभ्याद्बहिरिव स्फुरति।
कस्तूरी नाभिस्थाऽप्यरण्यमभितः सुवासयति।।

भले ही अन्तर्गूढ हो; व्यक्ति में यदि विद्या है तो सुगन्ध के समान वह बाहर स्फुरित होगी ही। मृग की नाभि में छिपी कस्तूरी; दिखाई भले न दे लेकिन इसकी सुगन्ध से समूचा अरण्य सुगन्धित हो ही उठता है।

४८

सुस्निग्धा अपि मुग्धा चिकुरा इव पामराः सदा वक्राः।
बन्धनमेवार्हन्ति स्वभावमलिनाश्चिरं नीचाः।।

कितने ही चिकने-चुपड़े हों, सरल हों, मुलायम हों, मगर केशों के समान ये दुष्ट व्यक्ति भी हमेशा टेढ़े के टेढ़े ही रहते हैं। और यही कारण हैं कि स्वभाव से ही मलिन इन नीचों को हमेशा बन्धन में बाँधे रखना चाहिए।

४९

किं वाच्यमिक्षुयन्त्रे गोभिर्विभ्रामयत्स्वतनुचित्रे।
घोररवेऽपि परार्थं रसं विनिःसारयत्यपूर्वत्वम्।।

ईख;... अहह;.. इनकी प्रशंसा करें भी तो किन शब्दों में! चर्र-चूँ चर्र-चूँ जैसी आवाजों वाले यन्त्रों में फँसा कर, बैलों द्वारा निर्दयतापूर्वक निचोड़े जाने से ठूँठ बन कर रह गए भी अपने शरीर से यह बिचारे दूसरों के लिए रस ही प्रदान करते हैं। सुस्वादु मधुर रस।

५०

निकषेणेव सुवर्णग्रहणवतैव तु परीक्षकेण सदा।
भाव्यं कषतापि महास्निग्धेनैवेह गुरुताप्तेः।।

परीक्षक को चाहिए कि वह एकमात्र स्वर्ण को ही ग्रहण करने वाली कसौटी के समान बना रहे। कसौटी; कि इस पर जितना भी घिसो, खुरचो, खरोचो बिचारा उफ्फ तक नहीं करता बल्कि उसी प्रकार स्निग्ध बना रहता है। परीक्ष्य की शुद्धता हेतु अपने कष्टों की उपेक्षा करता।

५१

सुस्निग्धमतिविशालं विमलं पृथुलं निगूढमतुलरसम्।
सुदृशां जघनमिव मनः कस्य वशे भवति धन्यस्य।।

सुन्दर, स्निग्ध, अत्यन्त निर्मल, विशाल, सदा ही छिपा रहने वाला और रस से सराबोर सुन्दरियों का जघन-प्रदेश और इस जघन सरीखा मानव-मन; विरले, किसी धन्यभाग्य व्यक्ति के ही वश में रहा करता है।

५२

संगृहणतोऽतिसरलानपि बाणान् हिंसकान्निषङ्ग तव।
नहि शून्यतां विनान्यद्धनुर्भृतो लक्ष्यलाभोऽपि।।

ऐ तरकस! सीधे-सपाट लेकिन बेदह तीखे और ज़हरीले बाणों को इकट्ठा रखने वाले तुम जब तक ख़ाली, बिलकुल रिक्त नहीं हो जाते तब तक तो बड़े-से-बड़े धनुर्धारी भी किसी लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते। ठीक उसी प्रकार ज्यों कटु और हिंसक विचारों से मनुष्य का हृदय रिक्त नहीं हो जाता, वह कितना भी परिश्रम करे लक्ष्य प्राप्त नहीं होता।

५३

यदि शारदागमे स्यान्मोदस्तत्सौमनस्यमेवोह्यम्।
जातेः फलाय मानं नो चेद्गोत्रोद्भवः पलाश्यपि वै।।

विद्या और शरद्; दोनों के ही आगम में व्यक्ति को कठिन दौर से गुज़रना होता है। जाति (वंश और चमेली) के फल की कल्पना तो दूर, इस फल को पलाश के समान समझना पड़ता है। तो चाहिए यह कि यदि आप दोनों के ही आगम में आनन्दित होते हैं तो अपने हृदय को प्रफुल्लित रखें।

क्या है कि विद्या का आगम उन्हीं को होता है जिन्हें अपनी जाति से नहीं अपनी विद्या से फल प्राप्त करना हो, क्योंकि वह अच्छी तरह जानते हैं कि अच्छी जाति में उत्पन्न हुआ भी पलाश आख़िरकार पलाश ही होता है।

५४

यावत् प्रागानपर्णान्यनपाकृत्याभिलसति नाश्वत्थः।
तद्वद्दुर्वृत्तीनां निःशेषध्वंसमन्तरा न सुधीः।।

जब तक व्यर्थ पौधों और उनके पत्तों को स्वयं से दूर कर और उनसे स्वयं को अभिरक्षित कर पीपल का वृक्ष पूर्णतः प्रकट नहीं हो जाता, वृक्षत्व को नहीं प्राप्त होता तब तक उसकी पूजा नहीं होती। उसी प्रकार दुर्वृत्तियों, दुराचारों का समूल नाश हुए बिना मनुष्य महान् नहीं हो सकता, पूजनीय नहीं हो सकता।

५५

एकमपि च सामग्र्यां वस्तु न चेन्नैव कार्यसिद्धिः स्यात्।
नहि मण्यादेः सत्वे शक्तोऽग्निस्तूलमपि दग्धुम्।।

सारी सामग्री इकट्ठी कर लीजिए किन्तु यदि इनमें किसी एक वस्तु की भी कमी हुई तो जान रखिए कि आपका प्रयोजन कथमपि सिद्ध नहीं हो सकता। अब देखिए ना - आग जलाने की सब सामग्री हो किन्तु बस एक कोई वस्तु न रहे तो आग छोटी सी रुई को भी न जला सके।

५६

रे काञ्चन तव गुरुता जाता यद्यपि सुवर्णत्वात्।
तदपि द्रवो न दृष्टो विनाऽतुलं वह्निसंयोगम्।।

अरे ओ स्वर्ण! हालाँकि अपने सुन्दर वर्ण के कारण तू बड़ा; महत्त्वपूर्ण अवश्य हो गया है लेकिन कुन्दन तू तब तक नहीं हो पाता जब तक कि भभकती आग पर तुझे खौला न दिया जाए। ज्यूँ आग में तप कर सोना कुन्दन हो उठता है त्यूँ व्यक्ति भी ज्ञान और सदाचार की आग में तप कर कुन्दन सा मृदुल, स्निग्ध हो जाता है।

५७

कार्या लघोरुपेक्षा गुरौ विधेया नतिः समे स्तम्भः।
मध्यस्थता दुरन्ता तदिह तुला कण्टकस्येव।।

आईये तराज़ू से ही कुछ सीखते हैं; और वह ये कि चाहे जिस स्तर पर हो सामने वाला यदि आपसे कमज़ोर है तो उसकी उपेक्षा करें! बलवान् है तो झुके रहें! और यदि बराबरी का है तो डटे रहें। काँटे की तरह बीच में न पड़े रहें क्योंकि बीच में ही झूलते रहना बड़ा दुःखद होता है।

५८

यदि न ग्रहपरवशनरगिराऽऽविरास्ते रुडत्र कस्यापि।
तर्हि किमिति खलवचसा सास्तां स तथा नहीति किमान।।

मनुष्य ग्रह-नक्षत्रों के परवश है, ऐसा समझ कर यदि उसकी वाणी से किसी को क्रोध नहीं आता तो दुष्ट व्यक्ति की वाणी सुन कर वही क्रोध क्योंकर? ... ...।

५९

पावयसि विश्वमखिलं गोदावर्युचितमेव तदिदम्।
हरशेखरमधिरुह्याप्युज्झसि नो नम्रतां किमपि यस्मात्।।

हे भगवति गोदावरी! यह तो उचित ही है कि आप समस्त संसार का भरण-पोषण करें, उसे पवित्र करें। अजी शिव के मस्तक पर सवार होकर भी जिसने अपनी विनम्रता तनिक न छोड़ी वह गोदावरी इस लघु कार्य पर कैसे इतरा सकती है?

६०

क्षणमपि विचारविरहे नरः खरत्वं प्रयाति तत्कालम्।
आत्तरसमिक्षुकाण्डं त्विन्धनतामेव याति यतः।।

अहह; एक क्षण के लिए भी व्यक्ति यदि विचार या विवेक-शून्य होता है, जीता-जागता गदहा हो जाता है, उपेक्षा के योग्य। ईख को देखा है - सरस, सुन्दर, स्पृहणीय ईख। लेकिन जैसे ही रस से विहीन होता है, महज़ इन्धन हो रहता है।

६१

सा वाग्ययाऽऽशु सूते विदूरगोत्रापि नूत्नरत्नचयम्।
कौशिकरवतः प्रत्युत जनपदविपदादिरेवालम्।।

वाणी और विदूर (मूँगा) हालाँकि दोनों का एक ही गोत्र है। किन्तु सच पूछिए तो वाणी तो वह है जो हाथ के हाथ नए-नए रत्नों का ढेर प्रस्तुत कर दे। अन्यथा तो वाणी वह भी है कि उल्लू बोले तो लोग-बाग चिन्तित हो उठते हैं कि कहीं गाँव पर विपत्ति का पहाड़ न टूट पड़े।

६२

प्रभुतीर्थेश्वरगुरुमुनिपुण्यद्रुमधनिकवह्निवैद्यगवाम्।
कार्यं विचारचतुरैः संसेवनमतिदूरनिकटमिह।।

स्वामी, तीर्थ, ईश्वर, गुरु, साधु-सन्त, पवित्र वृक्ष, धनिक, अग्नि, वैद्य और गायों की सेवा वही करे जो विचारों से चतुर हो। अजी विचारों की चतुरता इसलिए कि इन सभी की सेवा में सामयिक निकटता और दूरी का विचार बड़ा आवश्यक होता है।

६ ३

कान्ताकटाक्षमधुपः कस्य न सुमनोऽभिशोषको भवति।
येन भवारण्येऽस्मिन् भ्राम्यत एवाहरहरतुलम्।।

अहह; सुन्दरियों के कटाक्ष रूपी भँवरे संयत मन-बुद्धि भी भला किस पुरुष को रस-तत्त्वहीन नहीं कर देते? हाय; ये वही भँवरे हैं कि ज्ञानी और विद्वानों को भी संसार-रूपी जंगल में नित्यप्रति व्यर्थ घुमाया करते हैं।

६ ४

आशावशेन भगवान् समीरणोऽपि भ्रमंल्लोके।
पवमानोऽपि कवीन्द्रैर्निगद्यते मातरिश्वेति।।

हालाँकि 'समीरण' यानी 'अच्छी गति वाले' हैं, 'पवमान' यानी 'पवित्र करने वाले' हैं लेकिन हाय री आशा (दिशा) कि इसके वशीभूत विविध लोकों में भटकते यह वायु देवता भी कवियों के द्वारा महज़ 'मातरिश्वा' यानी 'अपनी माता में ही वीर' कह कर पुकारे जाते हैं।

६ ५

महदवमानः कार्यः स्वल्पव्ययभीरुणा न कुत्रापि।
सत्या अवमानवशाद्दाक्षो यज्ञोऽपि विध्वस्तः।।

अल्पव्यय अच्छी बात है लेकिन इतनी अच्छी भी नहीं कि इससे किसी का अपमान हो जाए!... एक शिव को भी बुला भेजते तो दक्ष का कितना ख़र्च बढ जाता भला?... ख़ैर, न बुलाया; मत बुलाओ, मगर यह शिव का अपमान किसलिए? तो यह शिव के अपमान का ही परिणाम था कि दक्ष का समूचा यज्ञ चौपट हो गया।

६ ६

दुर्बुद्धिदातारः किल पदे पदे सन्ति दुर्लभा इतरे।
कति कति न बर्बुरा इह पनसाद्याः क्वचिदपि क्वापि।।

संसार में दुर्बुद्धि देने वाले तो हर क़दम पर मिलेंगे मगर सुबुद्धि देने वाले विरले ही। अजी मीलों चलते चले जाईये काँटेदार बबूर तो क़दम-दर-क़दम मिलेंगे मगर छायादार कटहल वग़ैरह तो इक्के-दुक्के ही नज़र आवेंगे।

६७

चपलानामनुषङ्गान्मालिन्यं जीवनप्रदेऽपि बत।
तद्विरहे तु विमलता विशारदत्वे विनापि वसुदानम्।।

व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न हो, चपल और चञ्चलों का साथ होने से उसमें मलिनता प्रकट हो ही आती है।

अब देखिए ना - बादल; हालाँकि जीवन-रस बरसाते हैं, मगर शोख़ बिजली का सहवास इन्हें भी मलिन कर ही देता है। इसके विपरीत शरद् ऋतु के बीत जाने पर यही बादल हैं कि कोई पानी-वानी नहीं बरसाते मगर इतने साफ़, इतने स्वच्छ कि भाई वाह!... चपला चञ्चला का साथ जो नहीं रहा।

६८

सङ्गे सत्यत्यपि नितरां जडस्य यो नैव लिप्यते तेन।
स तु किं न राजहंसैरपि सेव्यः कमलकोश इव।।

निरन्तर मूर्खों की सङ्गति में रह कर भी यदि व्यक्ति मूर्खता से संलिप्त नहीं होता, उसमें मूर्खता संलिप्त नहीं होती तो निश्चय ही वह महापुरुषों के भी आदर का पात्र है। ठीक उसी प्रकार ज्यों निरन्तर पानी में ही रहने वाला मगर पानी के अंश-मात्र से भी दूर कमल-कोश बड़े-बड़े राजहंसों के आदर का पात्र हुआ करता है।

६९

स्नेहस्तु दुर्लभः किल विनाशविधुरो निसर्गसिद्धश्च।
अतिनिर्मलश्च लोके गोरसयोगं विना क्वापि।।

ओ बन्धु! अजी इस असार संसार में शुद्ध, निर्मल, निसर्गसिद्ध यानी किसी भी प्रकार के छल-कपट से रहित स्नेह को क्या ढूँढते फिरते हो? बड़ा दुर्लभ पदार्थ है। हाँ इस प्रकार का स्नेह चाहिए तो फिर बड़ी सावधानी से गोरस का सेवन करो! गोरस; जी हाँ गो अर्थात् वाणी के रस का!

नहीं समझे?... अजी अपनी वाणी में गाय के दूध सी मधुरता, स्निग्धता लाओ!

७०

भूतिप्रचुरैः स्नेहैर्निरन्तरं भावितस्तु खड्गोऽपि।
दर्शयति स्वमपि हृदि प्रचुरतरनिर्मलः किमुत लोकः।।

अपने ही हाथों जिसे निरन्तर शान पर घिसा किये, रगड़ा किये, धार लगाई वह तलवार ग़लती से भी यदि अपने ही हृदय पर गिर पड़े तो पार किए बिना नहीं रहती। फिर यह दुनिया; अहह यह तो पहले ही से अत्यन्त निर्मल, तेज़ और धारदार है।

७१

सुदृशां प्रेम्णा सङ्गः परतन्त्राणामकामतः श्रेयान्।
नो चेदनर्थहेतुः सद्यो द्विजराज एवेक्ष्यः।।

पराई सुन्दरियों की प्रेम-पूर्वक सङ्गति ऐसा नहीं कि ठीक नहीं! अजी बहुत अच्छी है बशर्ते कि इसमें और ख़ासकर आपमें काम की कोई भावना न हो! चन्द्रमा अपनी गुरुपत्नी की सङ्गति में बड़ा ही प्रेमपूर्वक रहा करता था मगर;... कामासक्त हो गया और उसके बाद की तो आपको मालूम ही होगा।

७२

क्षणमात्रं सद्वृत्तः सरसोऽपि च किं तरङ्ग इह भङ्गम्।
नैति कुरङ्गापाङ्गोऽप्यतः स्थितप्रज्ञतैवैष्या।।

सरस सुन्दर चञ्चल लहरें हों या चञ्चल लहरों सी, हिरनियों सी आँखों की नज़्ज़ारःकशी; अजी दोनों ही एक समय आता है कि क्षणमात्र में नष्ट हो जाती हैं। अब क्षणमात्र में विनष्ट हो जाने वाली इन सुन्दर चीज़ों से भला यह तो सीख लेनी ही चाहिए कि बुद्धिमान् 'स्थितप्रज्ञ' हो बैठ रहे।

७३

दीर्घदृशा किल मैत्री निष्कामत्वं विना न सुखहेतुः।
लवमात्रकामसत्वे क्वापि कदापि च पतेत्सपदि विपदि।।

बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों वाली मृगनयना तरुणियों से मित्रता तभी सुख दे सकती हैं यदि यह निष्काम हो। अजी तनिक भी काम की भावना ने आपमें घर किया नहीं कि यही मित्रता आपको कभी भी, कहीं भी और किसी भी विपत्ति में तुरत डाल सकती है।

७४

बत लीलयापि नेह स्वीकार्य्यं कुटिलवर्त्म चारुदृशा।
विष्णुमपि हन्त लोके बुद्धं पश्यन्त्यपि प्रौढाः।।

दूरदृष्टि वालों को चाहिए कि कभी अनजाने या आमोद-प्रमोद में भी किसी कुटिल, कठिन रास्ते का चुनाव न करें। अहह; मैत्री-करुणा-दया-अहिंसा के प्रवर्तक बुद्ध को भी दुनिया विष्णु का अवतार (कुटिल, वेदविरोधी-दारत्यागी) समझती है।

७५

मधुरध्वनिं विना किं सद्वंशजतापि राजते लोके।
गुणितापि वक्रतायै प्रत्युत जीवग्रहाय कोदण्डे।।

व्यक्ति चाहे जितने भी बड़े वंश में उत्पन्न हुआ, चाहे जितना गुणी हो यदि वाणी मधुर नहीं तो यह कुलीनता और ये गुण किसी काम के नहीं। अब धनुष को देखिए; बहुत अच्छी जात के बाँस का बना है लेकिन जभी इस पर गुण यानी डोर चढी मुआ किसी की भी जान ले सकता है।

७६

सौहृदमेव सुदृष्टेरतिकठिनं विहितपरविशुद्धमतेः।
क्षणमपि सकामता चेत्तत्कालं स्यादधः पातः।।

शत्रुओं की बुद्धि को भी अपने अनुरूप कर लेने वाली सुन्दर दृष्टि जिनकी है, वह चाहे साधु-पुरुष हों या सुन्दरियाँ; -ऐसे इन सुन्दर आँखों वाले की मित्रता ही बड़ी कठिन होती है। अब देखिए ना; इनकी मित्रता में यदि आपके भीतर एक क्षण के लिए भी काम प्रस्फुरित हुआ नहीं कि आपका पतन सुनिश्चित।

७७

रसमपि वमयत्यखिलं क्षुद्रा अन्तः प्रविश्य रसिकानाम्।
तदिह प्रमादगन्धोऽप्यस्तु न केषामपि क्वापि।।

एक क्षण का भी प्रमाद बड़ा भयावह दुष्परिणाम दे सकता है। अत्युत्तम भोजन के समय यदि प्रमाद से भी मक्खी गिर पड़े तो सब स्वाद, आनन्द चौपट। तो चाहिए यह कि व्यक्ति एक क्षण के भी प्रमाद से दूर रहे, बिलकुल सतर्क।

७८

शिव शिव मग्नोऽप्यन्तर्वैशाखो गोररसस्य गन्धमपि।
गुणवानपि नानुभवति जाड्यभ्रमं युवतिनेत्रयोगेन।।

क्या विडम्बना है कि गधे को दही-दूध या घी के कुण्ड में भी यदि छोड़ दें तो अभागा उसका गन्ध तक नहीं ले पाता। अहह; सुन्दरियों की चितवनों में डूबे बिचारे गुणवान् और विद्वानों का भी यही हाल है। श्रेयस् पदार्थों से घिरे पड़े हैं लेकिन उनका गन्ध तक नहीं पहचानते।

७९

वित्तं दानैकफलं वृत्तं ज्ञानैकफलमिति प्रौढाः।
प्राहुर्यदेतदेव स्पष्टं दृष्टं धने भानौ।।

बड़े-बुज़ुर्गों ने यह जो कहा कि धन का एक ही फल है दान और ज्ञान का एक ही फल है शील सो यदि ग़ौर से देखिए तो सच कहा। अब देखिए ना - धन हो तो ऐसा कि जिसे दिया जा सके और ज्ञान हो तो ऐसा कि सूर्य सा चमकता रहे।

८०

स्नेहिप्राणवियोजनपूर्वस्नेहाभिमोचने निपुणः।
किं भ्रमयत्यलं ते खलस्तिलोत्पीडकश्च तद्दृषद्वद् गौश्च।।

अहह; क्या आश्चर्य है कि स्नेही (तिल और व्यक्ति) के प्राण लेने और उनके पूर्व स्नेह (तेल और प्रेम) को नष्ट करने में निपुण यह पत्थर सा खल और यह बैल; दोनों ही आपको भ्रम में डाले नचाते ही रहते हैं, नचाते ही रहते हैं। और आप हो कि नाचते जाते हो, स्नेह डुबाते जाते हो, अन्ततः तिल के समान विनष्ट हो जाते हो।

८१

सुरभौ सत्येव गिरं विश्वमनोहरपरां प्रसारयति।
तदपगमे तु प्रायो मौनी कः परभृताद् द्विजोऽस्त्यन्यः।।

वसन्त के रहने पर ही कोयल संसार को प्रिय लगने वाली अपनी कूक से दिशाएँ भर देती है अन्यथा मधुमास बीत जाने पर जो यह चुप्पी साधे तो इस चुप्पी में भी कोयल का प्रतिस्पर्धी कोई नहीं?

८२

हर हर हारादिष्वपि सत्सु महाभूषणेषु सद्वृत्तः।
एकः सौभाग्यकरः शुभध्वनिः कङ्कणोपमः सुजनः।।

सुन्दरियों के शरीर पर एक से एक आकर्षक गहने पड़े होते हैं। लेकिन हार आदि इन अनेक गहनों में भी कंगन ही है जो सौभाग्य का सूचक, मृदुल-मनोरम ध्वनियों और सुन्दर आकार-प्रकार वाला हुआ करता है। तो चाहिए यह कि व्यक्ति को युवतियों के इन कंगन के समान ही सौभाग्य-सूचक, मधुरभाषी और सुन्दर आचार-विचार वाला हो कर रहना चाहिए।

८३

प्रातः प्रतिदिनमेते रटन्ति करटास्तथापि किं कोकैः।
समतां प्रयान्ति को वा मित्रप्रियतां विना मान्यः।।

कोई ऐसी सुबह नहीं कि कौव्वे काँव-काँव चिल्लाना शुरू न कर दें मगर फिर भी क्या ये प्रियमिलन को करुण-गान करने वाले चकवों की समानता कर सकते हैं भला? अहह; मित्र (सूर्य और प्रिय) की प्रीति के बिना भी कोई मान्य है भला?

८४

मित्रस्यापि तुलायामारोपे तीक्ष्णता परिस्फुरति।
तदिह स्फुटं परीक्षणनिर्णयनं नैव बत नृणा कार्यम्।।

दूसरों की तुलना में यदि स्वयं को रखा तो कभी भी सुखी न रहोगे! अजी तुला चढने पर तो स्वयं भगवान् सूर्य भी प्रचण्ड, प्रचण्डतर और प्रचण्डतम होने की होड़ में जा फँसते हैं। तो चाहिए कि व्यक्ति कभी भी किसी और से स्वयं की तुलना न करे।

८५

यावद्यावत् प्रतपति भानुस्तावत् प्रवर्षणं तनुते।
नहि नहि महतां कोपः परिणामे हितमनभितन्वन्।।

महान् लोगों का क्रोध अपनी अन्तिम सीमा में मङ्गल करने वाला ही हुआ करता है। सूर्य को देखिए - जैसे-जैसे और जितना ही यह दहकते हैं वैसे-वैसे और उतना ही अच्छी बारिश कराते हैं। तो यदि क्रोध ही करना हो तो कुछ इस प्रकार का करें।

८६

जडमात्रप्रीतिकरः सततं यो रोधको रसज्ञानाम्।
कस्य न शक्त्यपहर्ता ज्वर इव नरस्य दुर्जनो भवति।।

दुर्जन और बुख़ार में कोई बड़ा अन्तर थोड़ा ही न है! अजी दोनों हैं कि महज़ किसी मूर्ख को ही सुहाएँगे। दोनों हैं कि आनन्द लेने की हर अच्छी चीज़ से आपको दूर किए रहेंगे। दोनों हैं कि आपका सारा बल; भले शारीरिक हो, मानसिक हो, बौद्धिक हो; - निचोड़ लेंगे।... तो?... तो यह कि ऐसे इन बुख़ार से दूर रहिए!

८७

निक्षिपतु सम्परीक्ष्य तु निजहृदि पुरुषः स्वदोषमखिलमपि।
यदि वाञ्छति सह सुदृशा रतिं कलङ्कोऽन्यथा भूयात्।।

बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों वाली युवतियों और ज्ञानियों के साथ रमण की इच्छा हो तो पुरुष को चाहिए कि पहले वह हृदय में अपने अवगुणों की पहचान करे और सावधानी से उन्हें दूर कर ले। अन्यथा की स्थिति में रमण मात्र कलङ्क ही देगा।

८८

पदमिव पदमपि सुदृशां सञ्चरति न सन्धिविग्रहादि विना।
किं खञ्जनतरुणाभ्यां निधिभुवमनवेक्ष्य निधुवनं क्रियते।।

मृगनयना तरुणियों से उत्तम रति की अपेक्षा हो तो सन्धि और विग्रह के सब रहस्यों का ज्ञान रखिए! बात यह है कि ज्यूँ सन्धि और विग्रह परक वचनों के बिना इनके मुख से बात नहीं फूटती त्यूँ मेल-मिलाप, प्रशंसा और चाटुकारिता जैसे वचनों के बिना सुरत में इनके पैर नहीं प्रवृत्त होते। हो भी तो आख़िर क्योंकर? जल या आर्द्र भूमि को बिना देखे-परखे खञ्जन-पक्षी आख़िर जोड़ा खाएँ भी तो किस तरह?

८९

शिव शिव शिलाकणैरपि तृप्तौ कलरवरतौ च विपुलायाम्।
खलतः कणसम्पादनवाञ्छा तव हानये सद्यः।।

हाय री लालच!... मृदुल-मनोरम स्वर-ध्वनियों के बीच चक्की-पिसे अनाज के टुकड़ों से परम सन्तुष्ट भी यदि तू खल से ही कण साधना चाहता है तो यह तेरी मर्ज़ी, तेरी बुद्धि और तेरा भाग्य!! मगर याद रखना खल से एक कण भी प्राप्त करने की तेरी यह इच्छा तेरा सर्वनाश कर देगी!!!

१०

एकस्मादेव गुरोर्द्विजराजादमृतवद्गवां रसतः।
तृप्ताः कति द्विजास्ते क्षुद्राः प्रतिसप्तकोटिशः सन्ति।।

गायों से दूध और चन्द्रमा से अमृत के समान एक ही गुरु से दिव्य ज्ञान प्राप्त कर न जाने कितने ही बुद्धिमान् व्यक्ति तृप्त हुए; कृतकृत्य हो उठे। किन्तु यह दृष्टि और सन्तोष की प्रवृत्ति है कि करोड़ों ऐसे भी क्षुद्र व्यक्ति हैं जो भौतिक या आध्यात्मिक आनन्द के लिए यहाँ-वहाँ मुँह मारे फिरते हैं।

११

सर्पा दशन्ति लोकानथापि किं तृप्तिरस्ति ते तु मृताः।
मन्त्रो न लभ्यते चेत् स्वभाव एवैष हा द्विजिह्वानाम्।।

साँप और चुग़ुलख़ोर; दोनों की प्रकृति एक है। कारण रहे न रहे दोनों ही व्यक्ति को डसते हैं, डसते ही रहते हैं। अब जिन्हें डसा गया उन्हें यदि समय पर उचित मन्त्र (औषधि और सलाह) न मिले तो बिचारे मर जाते हैं। लेकिन साँप या चुग़ुलख़ोर को इससे क्या? यह डसने से भला कब तृप्त हुए? यही इनका स्वभाव है। हाँ हो सके तो सर्पों की भाँति इन चुग़ुलख़ोरों से बचे रहिए।

१२

स्वल्पमपि साधुवचनं सद्यस्तनुते हितं निरुपमानम्।
लघ्वपि भेषजमतुलं न हन्ति किं जन्मरोगमपि।।

सज्जन, ज्ञानी या महान् व्यक्तियों की एक छोटी सी बात या कोई उपेदश भी हाथ के हाथ आपका हित साध सकता है, मङ्गल कर सकता है। ठीक उसी प्रकार ज्यों उचित दवा की बस एक ख़ुराक आपके उन रोगों को भी जो कि आपके जन्मकाल से चले आ रहे, चुटकियों में ठीक कर देती है।

९३

चर्वितमपि द्विजैः किल रसं लिहन्ति स्वयं रसज्ञा धिक्।
यस्मात् तदृते तृप्तिर्जाताप्याभासताम् एति।।

क्या विडम्बना है! जिन होठों को दाँतों ने पहले ही काट खाया है, ऐसे उच्छिष्ट, अपशिष्ट और क्षत-विक्षत होठों को भी चूमता, चाटता, पीता हुआ व्यक्ति उनसे रस प्राप्त करता है। वस्तुतः इनमें रस है कहाँ कि उन्हें रस मिले? अजी यह तो किसी की झूठन चाटते व्यक्ति का भ्रम है जो उसमें रस के आभास की तरह प्रतीत होता है।

९४

वीर्यं बुद्धिर्धैर्यं बलमुत्साहः समुद्यमश्चैतत्।
षड्गुणमैश्वर्यमिदं प्रत्यक्षं नीतिषाड्गुण्यम्।।

यदि आप ईश्वर होना चाहते हो! ऐश्वर्य-गुण सम्पन्न हुआ चाहते हो तो कोई बड़ा-भारी तप-याग आदि आपको नहीं करने! नीति के षाड्गुण्य अर्थात् नीतिशास्त्र द्वारा समर्थित इन छः गुणों को स्वयं में समाहित कर लो - वीर्य अर्थात् पराक्रम, बुद्धि, धैर्य, बल, उत्साह और फलप्राप्ति के अन्त तक उद्यम करते रहना।

९५

अतुलमपि स्वहितं चेत् किमल्पमपि घातनीयमन्यहितम्।
पक्ष्यपि चातक एषोऽहिंसायै व्योमजीवनं भजते।।

ग़ैर के किसी थोड़े भी अहित से यदि अपना बड़ा भारी हित सध रहा हो तो क्या उसका अहित कर देना चाहिए? आईये चातक से यह बात सीखते हैं। चातक; निरा पक्षी ठहरा, बुद्धि-विवेक और सामर्थ्य से हीन। लेकिन अपने आहार के लिए यह किसी जीव-जन्तु का शिकार नहीं करता, अपितु अहिंसा का पालन करता हुआ बादलों से जल की ही याचना करता रहता है।

९६

प्राणात्ययेऽपि महतां प्रवृत्तिरपि नैव नीचसेवायाम्।
नहि राजहंस एति प्रलयेऽपि च मरुभुवं भ्रान्तः।।

मनस्वियों, मानियों की रीत है कि प्राण जाने के मूल्य पर भी वे किसी नीचकर्म या नीच की सेवा नहीं कर सकते। अजी मानसरोवर जब बर्फ़बारी से ढक जाता है, कहिए प्रलय आ जाता है तो भी राजहंस क्या भटक कर भी तपते रेगिस्तान की ओर मुँह करेगा? कभी नहीं।

९७

सरलोऽपि नैव कुटिलं गुणलोभेनापि सेवितुं युक्तः।
धनुराश्रयणाद् बाणः प्राणिप्राणानपि प्रात्ति।।

सरल व्यक्ति को चाहिए कि गुणों के लोभ मात्र से ही वह किसी कुटिल की सेवा न करने लग जाए अन्यथा परिणाम और भी हानिकर होता है। हाय-हाय; सीधे-साधे, सरल, सुन्दर और अहानिकर बाण गुण (डोर) के लोभ से जब कुटिल धनुष की सङ्गति चढते हैं; दूसरों का ही प्राण ले बैठते हैं।

९८

मधुरध्वनिनिपुणोऽपि न रसलोभेनापि कण्टकिनमेतु।
बत षट्पदोऽपि बद्धः प्रत्यक्षं पद्मकोशतो भवति।।

रस; आप विषय-वासना समझ लीजिए, -का लोभ आपके सब सामर्थ्य, गुण और विशिष्टताओं के साथ आपको ले डूबेगा। भँवरे से यही सीख लीजिए! भँवरा; छः पैर होते हैं इसके। मधुर गुंजार सी आवाज़ में इसका कोई सानी नहीं। लेकिन रस के लोभ का मारा बिचारा कई बार कमल-कोश में क़ैद हो रहता है, नष्ट हो जाता है।

९९

सत्यामप्यति विपदि प्राज्ञः किं नैजमार्गतश्च्यवति।
राहुग्रस्तोऽपि शशी न स्वालम्बां जहाति खलु ताराम्।।

विपत्तियों का पहाड़ भले टूट पड़े प्रकृष्ट बुद्धि वाले महान् लोग अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं होते। चन्द्रमा को देखिए; राहु द्वारा ग्रस्त होता भी यह कभी अपने अवलम्बी तारे (की कक्षा) को नहीं छोड़ता।

१००

लोकोत्तरलाभेऽपि च गुणिना कार्यः कथं नु परधर्मः।
शारदराकामृतकरमीक्षितुमपि कमलिनी यतते।।

सामान्य तो सामान्य, असामान्य बल्कि लोकोत्तर पदार्थ के लाभ होने पर भी कोई गुणी या विद्वान् भला गर्हित कर्म कैसे कर सकता है? अपने धर्म से विमुख भला परधर्म का आचरण कैसे कर सकता है? शरद् ऋतु की पूर्णिमा की रात हँसता-खिलखिलाता चाँद होगा कोई लोकोत्तर रूप-स्वरूप-सौन्दर्य का प्रतीक। किन्तु कमलिनी कभी उसे देखने के बारे में सोच भी सकती है भला?

१०१

सुमनोभिर्महति सति श्रमेऽपि सेव्यः किमत्र धूर्तजनः।
नहि मध्वीमुकुलानां भृङ्गाभावेऽपि काकलिप्सास्ति।।

चाहे जितनी परेशानी में हो, चाहे जितना कष्ट उठाना पड़ रहा हो; ज्ञानी, मनस्वी या बुद्धिमान् व्यक्ति कभी घबरा कर किसी धूर्त से सहायता लेगा? ज़रा सोचिए कि माध्वी की ताज़ा-ताज़ा कली भँवरों के अभाव में किसी कव्वे की इच्छा करेगी?

१०२

सुधिया तु लीलयापि प्रेक्ष्यः किं परवधूकटाक्षोऽपि।
नहि नहि कपोतमिथुनेऽप्येकमृतावपि परासक्तिः।।

किसी कबूतर से कम बुद्धिमान् तो आप नहीं होंगे! तो ज़रा सोचिए कि दिल्लगी के लिए ही सही क्या परायी स्त्रियों की ओर आपको आँख उठा कर देखना चाहिए? अजी कबूतर के जोड़े में यदि एक मर भी जाए तो दूसरा किसी और की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता!

१०३

परतरुणीमिषतः किल मन्येऽहं वारुणीं मूर्ताम्।
यद्वीक्षणेऽपि माद्यति निपतति पुरुषः क्षणेनैव।।

परायी स्त्री के बहाने यक़ीन मानिए यह शराब ही है जो स्वांग धरे बैठी है। अजी न होती तो आप तो बख़ूबी जानते हो कि शराब पीने पर नशा आता है। मगर परायी

युवति; अहह इसे तो देखते ही वह नशा छाता है कि आदमी मदोन्मत्त हो उठता है। आपा खो बैठता है और अन्ततः ऐसा पतित होता कि बस पूछो मत।

१०४

अन्यधनं किल निधनं मूर्तं सुधियां निधानमन्धानाम्।
आधानं पापानां यस्माल्लक्ष्म्यास्तिरोधानम्।।

अब लगे हाथ ज़रा पराये धन की भी सुनिए! तो यह जो पराया धन है वह औरों के लिए जो हो, मगर उन बुद्धिमान् के लिए जो इसकी लालच में अन्धे हुए पड़े हैं; - के लिए तो साक्षात् मृत्यु और पाप का वह आधान है जिससे लक्ष्मी विलीन होती है।

१०५

मरणेऽपि वा मणौ वा प्राप्ते पुंसा कदापि न त्याज्यः।
क्वचिदपि हन्त विवेकः सखेव निखिलार्थदाता यत्।।

पुरुष को चाहिए कि मरण प्राप्त हो या मणि, अरबों-खरबों की प्राप्ति हो या प्राणों पर सङ्कट बन आवे कभी भी और किसी भी परिस्थिति में अपने विवेक को हाथ से न जाने दे। अजी यह विवेक ही है कि यदि सलामत रहे तो किसी प्रिय मित्र की भाँति असीम धन-सम्पत्ति चुटकियों में प्राप्त करा देता है।

१०६

अस्मिन् मनुष्यदेहे सत्यपि नाके न यस्य विद्याख्या।
कल्पलता किं तस्य तु दिव्यस्त्रीभिः श्रिया वापि।।

इस मानव शरीर को प्राप्त कर भी जिसने इस लोक में विद्या रूपी कल्पलता प्राप्त नहीं की अहह; परलोक में स्वर्ग की अप्सराएँ और वह सुख-वैभव उसके किस काम आने वाली?

१०७

आयुरमृतमिदमनुपममवाप्य विबुधो न यस्तु सुमनाः स्यात्।
धिक् तं नरखरमूषरमाप्य तमागमकृषीवलोऽप्यकृती।।

आयु रूपी अनुपम अमृत को प्राप्त कर भी जो विद्वान्, बुद्धिमान् या गुणवान् सुन्दर मन या सुन्दर हृदय वाला नहीं हो जाता उस मनुष्य रूपी गधे को धिक्कार है। अहह; ऐसे मनुष्य रूपी ऊषर भूमि को प्राप्त कर तो स्वयं खेतिहर, साधारण सा कोई किसान भी अपने दुर्भाग्य पर रो उठे।

१०८

इत्यच्युतेन रचितः श्रीहरितृप्त्यै तदेककृपयैव।
स्वमुदेऽप्यद्वैतामृतमञ्जर्यां नीतिमात्रमुकुलोऽयम्।।

भगवान् श्रीहरि की तृप्ति और स्वयं उनकी एकमात्र कृपा के द्वारा अच्युत ने अपनी भी प्रसन्नता हेतु इस प्रकार अद्वैतामृतमञ्जरी में नीतिमुकुल की रचना की।

।।शिवोऽहम्।।
।।सम्पूर्णः।।

रतिनीतिमुकुलः

अच्युतरावमोडकविरचितायाम् अद्वैतामृतमञ्जर्यां

रतिनीतिमुकुलः

श्रीगणेशाय नमः। श्रीकुलदेवाय नमः। श्रीशं वन्दे।

१

भव्या निजैकसेव्या ददती चातुर्यतश्चतुर्वर्गम्।
स्वस्मिन्नेव रतिमती सतीव मतिरेव जयति नीतिरपि।।

अत्यन्त चतुरता के साथ धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष के रूप में चारों पुरुषार्थों को सहज प्राप्त कराने वाली एकमात्र अपने प्रिय द्वारा जिसका उपभोग किया जाता हो और अपने प्रिय-मात्र में ही जो प्रेम भी रखती हो ऐसी किसी भव्य सती स्त्री के समान मति और नीति; संसार में ये तीनों ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

२

मलिना अपि संयमनात्कुटिला अपि सुमनसां समागमतः।
बाला अपि मुक्तानामनुषङ्गान्निजरिज्यतां यान्ति।।

प्रिय-विरह में नितान्त संयमित होने के कारण मलिन, पुष्पों से गुँथे होने के कारण टेढ़े-मेढ़े भी सुन्दरियों के केश मोतियों का सामीप्य प्राप्त कर कामी-जनों का चित्त-हरण करने वाले हो जाते हैं।

ठीक उसी प्रकार जैसे विविध प्रकार के संयम के बाद भी मलिन और सज्जनों के समागम के बावजूद कुटिल-स्वभाव अज्ञानी जीवन्मुक्त साधकों के अनवरत साहचर्य से देवताओं द्वारा भी स्पृहणीय, पूजनीय हो जाते हैं।

३

कुटिलाऽकुलोऽपि राग्यपि दर्शनतः क्षोभकोऽपि बद्धोऽपि।
सीमन्तवदृजुश्चेन् मुक्ताभूष्यो न किं भूयात्।।

व्यक्ति कितना भी कुटिल, चञ्चल, रागाभिभूत, चित्तोद्वेजक, लोभ और मोह से आबद्ध हो; स्त्रियों की माँग सी विनम्रता भर उसमें आ जाए तो उसी प्रकार आदर का पात्र हो जाता है जैसे - घुँघराले केशों से घिरी; सिन्दूरी लालिमा से विभूषित, देखते ही चित्त को प्रसन्न कर देने वाली और विशेष रूप से आबद्ध भी स्त्रियों की झुकती हुई माँग मोतियों से सजाई जाती है।

४

रागैकमूर्तिरपि सन् विशालममलं शिवेन्दुतुलमेव।
लब्ध्वा सौभाग्यकरो नरो न किं भालमिव तिलकः।।

राग-द्वेष की साक्षात् मूर्ति हुआ मनुष्य भी यदि शिव के मस्तक पर आलोकित चन्द्रमा सा प्रकाश (ज्ञान का आलोक) प्राप्त कर ले तो क्या प्रशस्त; गौराङ्ग भाल (मस्तक) पर आलोकित तिलक के समान सौभाग्य से विभूषित नहीं हो उठता?

५

गुणकोटिशालितायामपि सत्यामेहि नम्रतामेव।
भ्रूधनुरिवाबलानां क्व लक्ष्यलाभोऽन्यथा कटाक्षेऽपि।।

आपके लाखों गुणों के बावजूद 'विनम्रता' पर ही विशेष ध्यान देना, क्योंकि यह गुण नहीं तो सब गुण बेकार समझना!...

मृगनयना तरुणियों के भ्रू-धनुष से चला एक कटाक्ष-तीर भी बड़े से बड़े सिद्ध, योगी, महात्मा और देवताओं तक को ऐसा घायल करता है कि बस पूछो मत!... मालूम है ऐसा क्योंकर होता है?...

अजी यह सब झुकी-झुकी इन्हीं नज़रों (विनम्रता) का कमाल है।

६

श्रुतिपरिचयेऽपि यावन्निरञ्जनत्वं न रागितावशतः।
तावत्त्वञ्जनमलिनैश्चापल्यं तन्यतेऽङ्गनानयनैः।।

वेदों के ज्ञानी भी राग-द्वेष से मुक्त होकर जब तक अपने अज्ञान-अन्धकार को दूर नहीं कर लेते तब तक उनमें चपलता; चञ्चलता उसी प्रकार रहती है जैसे तरुणियों की प्रिय-विहीन आँखों में चपलता।

अब देखिए ना - कानों तक फैली बड़ी-बड़ी चञ्चल आँखों वाली नायिकाओं की काजल सजी आँखें तभी तक चञ्चल फिरा करती हैं जब तक उनमें किसी का अनुराग घर नहीं करता। अनुरक्त आँखों में काजल की मलिनता का क्या काम - 'जिन नयनन में पी बसै दूजा कौन समाय'....

७

आलोचयद्भिरखिलैः श्रयणीयः साधुपक्ष एव मुदे।
नहि सुन्दरीदृगन्तः श्रयते कुटिलां भ्रुवं श्रुतिं हित्वा।।

(आ समन्ताद् लोचनम् आलोचनम्) 'सभी ओर और सबकुछ देखना' यदि आलोचना है तो आलोचन करने वालों को मृगनयना तरुणियों के चञ्चल चितवनों से एक बात तो जरूर सीखनी चाहिए; और वह है आलोच्य के साधु-पक्ष का आश्रय।

क्या ग़ज़ब की बात है कि आलोचन में निपुण सुन्दरियों की आँखें कभी भौंहों की कुटिलता का आश्रय नहीं लेतीं, अपने विस्तार के लिए कानों का ही आश्रय लेती हैं।

८

श्रुतिपरिचयेऽपि बहिरिह शोभनशुभवृत्तत्वेऽपि दृष्टियोगेऽपि।
खण्ड्यः सितैर्द्विजैर्मृदु खलः स्वबालाकपोलश्च।।

खल और अपनी प्रियतमा के गाल; दोनों बहुत ही मृदुता के साथ काटे जाने चाहिएँ। हुआ करे वेद-वेदाङ्ग पारङ्गत, उत्तम आचरण वाला और शुद्ध दृष्टि से युक्त; यदि वह खल है तो विद्वानों द्वारा शालीनता पूर्वक उसका खण्डन होना ही चाहिए।

ठीक उसी प्रकार जैसे युवतियों के सुन्दर, वृत्ताकार, कान तथा आँखों तक फैले गालों का स्वच्छ दाँतों द्वारा बहुत ही मृदुता के साथ खण्डन होता है।

९

त्रातापि च द्विजानां रागीत्यन्यैर्द्विजैः क्षतोऽपि बत।
न जहाति मधुरिमाणं मुग्धाया अधर इव धीरः।।

लाख सताओ, नायिकाओं के अधर और धीर-पुरुष अपनी मधुरिमा नहीं छोड़ते। अब देखिए ना - साधु-सज्जनों की रक्षा करने वाला भी धीर पुरुष दूसरे कुछ साधु-सज्जनों के द्वारा रागी होने के आरोप में घिर कर कई प्रकार के कष्ट उठाता है। परन्तु इतना होते हुए भी वह अपनी धीरता उसी प्रकार नहीं छोड़ता, जैसे - दाँतों की रक्षा करने वाला मुग्धा नायिकाओं का अधरोष्ठ; गुलाबी होने के कारण कुछ दूसरे दाँतों के द्वारा काट खाया जाता है, पर अपनी मधुरिमा कभी नहीं छोड़ता।

१०

सत्कर्मणातिविमलं चिरं प्रसन्नं स्वनाथयोगेन।
वीक्षणरम्यं रमणीमुखमिव सुखदं तु मन एव।।

व्यक्ति को चाहिए कि वह अपना मन नवोढा तरुणियों के मुख सा बना ले, फिर देखिए यह मन कैसा सुख देने वाला हो जाता है!

तरुणियों का मुख सत्कर्मों के कारण अत्यन्त निर्मल, अपने प्रेमी अथवा पति के सम्पर्क से सदा प्रसन्न, रमणीय और सुख प्रदान करने वाला होता है। यदि व्यक्ति का मन भी सत्कर्मों से पवित्र और ईश्वर में सम्पृक्त रहने से सदा प्रसन्न रहने वाला हो जाए तो वह भी देखने में अत्यन्त रमणीय और सुख प्रदान करने वाला हो जाएगा।

११

सत्येवान्तः प्रेम्णि द्विजराजानां रुचिर्बहिः स्फुरति।
बालानां तु स्नेहाद् बाह्यादेवेक्ष्यते सात्र।।

प्रेम आभ्यन्तरिक हो; बल्कि अन्तःकरण ही प्रेममय हो तभी बड़े से बड़े ज्ञानी की भी आकृति, छवि और प्रतिष्ठा संसार पर अपना असर छोड़ती है।

नवयौवना तरुणियाँ हों या बच्चे, दोनों में ही आन्तरिक प्रेम होने के कारण उनके होठों पर उभर आये मन्दस्मित (जिनमें उनके दाँतों की कान्ति प्रस्फुटित होती है) दूर से ही दिखाई पड़ जाते हैं।

१२

सुदृशां कटाक्षलाभाद् योऽयं रसिकस्य जायते मोदः।
किमसावनीक्षणानां भूयात् सर्वात्मदर्शनेनापि।।

सर्वत्र समत्व और मङ्गल दृष्टि वाले सज्जनों के कृपा-कटाक्ष से जैसा आनन्द और सन्तोष; गुणीजनों को प्राप्त होता है, वही आनन्द मूर्ख और कुदृष्टि वाले अल्पज्ञों की सतत सङ्गति से भी नहीं प्राप्त किया जा सकता।

चञ्चल चितवन वाली नायिकाओं के कटाक्ष-मात्र से रसिक-जनों को जो आनन्द प्राप्त हो जाता है, ओ बन्धु सच बतलाना — किसी अन्धी युवती के 'सबकुछ' दीख पड़ने पर भी वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है क्या?

१३

अमृतं विना न तृप्तिर्विबुधानामपि हि दृश्यते क्वापि।
रागी तस्य तु निकटे सत्वेऽप्येति क्षतं युवत्यधरः।।

देवता हुए तो क्या हुआ; अजी अमृत की चाह उन्हें भी थी और इसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने अमृत-स्रोत समुद्र को मथना तब तक नहीं छोड़ा जब तक क्षत-विक्षत समुद्र से अमृत नहीं निकल आया। अब समझ आया कि नवयौवना तरुणियों के अधर बड़े से बड़े ज्ञानी, गुणियों द्वारा भी क्यों काट खाये जाते हैं?.... अजी वही अमृत के समान आनन्द की खोज में!

१४

यो यो यं यं विषयं मृगेक्षणाऽपाङ्ग इव समाश्रयते।
तत्स्मितवदेव तमपि त्वमनुसरेः ह्यन्यथानर्थः।।

व्यक्ति को चाहिए मृग के समान चञ्चल आँखों वाली युवतियों के अपाङ्ग (कटाक्ष) की भाँति प्रतिक्षण प्रत्येक विषय का आश्रय तो ले (निरीक्षण तो करे) किन्तु अनुसरण वह तरुणियों के मन्दस्मित के विषय का ही करे अन्यथा अनर्थ सुनिश्चित है।

तरुणियों की चञ्चल आँखें एक ही क्षण में अनेक विषयों (पुरुषों) का आश्रय लेती हैं किन्तु मन्द-स्मित के साथ जिस विषय का आश्रय वह लेती हैं वह निर्णीत होता है और वही परमानन्द का कारण भी।

१५

सरसेऽपि च सन्दर्भे ह्रद इव कमलं विकासमेति मुखम्।
दीर्घदृशामेव मुहुस्तस्मान्मास्त्वल्पदृष्टिसङ्गोऽपि।।

व्यक्ति कितना भी सरल, सुन्दर और उदार क्यों न हो जब तक उसकी सङ्गति दूरद्रष्टा गुणियों से नहीं होती, उसका विकास पूर्ण नहीं होता। ओ भाई बड़ी-बड़ी आँखों वाली तरुणियों के मुख से कम से कम यह तथ्य तो सीख लो!...

शैवाल होने पर भी लबालब भरे तालाब में ही जैसे कमल की शोभा है, उसी प्रकार सरस शृङ्गार-परक चेष्टाओं में; बड़ी-बड़ी आँखें होने पर ही नायिकाओं के मुख की। छोटी-छोटी आँखों वाली नायिकाओं के मुख में नहीं।

१६

प्रोत्साहभङ्ग एव प्रतिक्षणं जायते बतास्माकम्।
अन्धे मृगनयनानामिव मूर्खे रसविकासेन।।

क्या ही आश्चर्य है कि मृगों के चपल और चञ्चल नयनों के समान आँखों वाली युवतियाँ ज्यों किसी अन्धे में प्रेमासक्त हों त्यों हम भी मूर्खों की ओर आसक्त हो रहे हैं।

हाय-हाय;... किसी अन्धे द्वारा मृगनयनी कन्याओं की बड़ी-बड़ी, गोल और सुडौल आँखें क्या कभी भी प्रशंसित होंगी कि मूर्खों के सम्पर्क में भी हमारा जीवन प्रशंसित होगा?

१७

सख्यं यत्र न तत्र व्यवधानं क्वापि किमपि कर्तव्यम्।
इति शिक्षितुमिव दृष्टिः श्रुतिमिवोपैति मुहुरनल्पदृशाम्।।

व्यक्ति को चाहिए कि जिससे मित्रता हो उसके साथ किसी भी प्रकार का दुराव-छुपाव न रखे। किसी भी तरह की दूरी बीच में न रहने दे। बल्कि इस दूरी को मिटाने का निरन्तर प्रयत्न करता रहे।

अहह;.. बड़ी-बड़ी आँखों वाली नायिकाओं की बड़ी और सुडौल आँखें मानो यही सीख देने तो बार-बार कानों के पास जाती हैं; अन्यथा आँखों का विस्तार सदैव कानों की ओर क्यों होता भला?

१८

महतामेव तु सङ्गान्नश्यत्यखिलोऽपि किल कलङ्कोऽपि।
इति निर्णीतं सुदृशां मुखतामाप्तं निरीक्ष्य खलु सोमम्।।

अहह;... उधर देखो यह चन्द्रमा भी आज बड़ी-बड़ी आँखों वाली इन युवतियों के मुख को प्राप्त कर, कलङ्क रहित सा देदीप्यमान है। महान् लोगों के सम्पर्क से ही मनुष्यों के चारित्र-दोष समाप्त हो सकते हैं, उनका कलङ्क मिट सकता है।

१९

विद्याभ्यासे क्षणमपि रे चपला मा कुरुध्वमालस्यम्।
किमपाङ्गैर्मुग्धानां श्रुतयो लवमपि विरम्य सेव्यन्ते।।

ओ चपल विद्यार्थियों!... युवतियों की आँखों से ही कुछ सीखो; अजी सीखो कि विद्योपार्जन में एक क्षण का भी आलस्य नहीं करना चाहिए।

सुनो!... तुमसे भी चपल और चञ्चल होती हैं मृगनयनियों की आँखें। लेकिन क्या कभी आधे क्षण का भी विलम्ब करती हैं यह कानों तक पहुँचने के अभ्यास में। इस अभ्यास से ही तो आँखें वह विद्या प्राप्त करती हैं कि गोल, सुडौल और बड़ी-बड़ी होकर तुम्हें भी तुम्हारे लक्ष्य से भटका देती हैं।

२०

हृदये सौवर्णं गुणमाप्यैवान्तस्तु रागि रत्नमपि।
सौभाग्यबीजभूताः सुदृशां निवसन्ति नासिके मुक्ताः।।

मोती, अन्दर से भले ही एक चमकदार रत्न है लेकिन सोने की तार में पिरो दिये जाने पर ही वह सुन्दरियों के नाक में सौभाग्य के बीज की तरह; नथुनी बनकर रहता है।

व्यक्ति जाति-रंग-रूप से कितना भी सुन्दर क्यों न हो, जब तक उसके हृदय का वर्ण सुन्दर नहीं होगा लोक-प्रतिष्ठित नहीं होगा।

२१

गुणपारतन्त्र्यभाजां रन्ध्रवशाद् बन्धनं विशुद्धानाम्।
मुक्तानामपि दृष्टं धिग्धिक् सच्छिद्रतां तस्मात्।।

'गुणों की परतन्त्रता' को स्वीकार करने वाले विशिष्ट रूप से शुद्ध, बुद्ध और जीवन्मुक्त सन्त-महात्मा जन भी अपने इसी दोष-मात्र के कारण विविध भाँति के बन्धनों में जकड़ ही जाते हैं।

भाई क्या तुमने देखा नहीं है कि - मोती कैसा शुद्ध रत्न होता है; सफ़ेद, बिलकुल चमकदार! लेकिन चूँकि वे भी धागों (गुणों) की परतन्त्रता को स्वीकार करते हैं अतः उनमें भी छेद होता है और वे बन्धनों में जकड़ लिए जाते हैं।

२२

श्लेष्मागारे वसतिर्जातास्माकं तदत्र माऽऽयात।
आन्दोलनच्छलादिति निवारयन्त्येव मौक्तिकानि विटान्।।

ओ भाई! रति सी सुन्दर स्त्रियों के कानों में लटकते-मटकते और मस्ती में झूमते झुमकों; और उनमें पड़ी मोतियों को तो तुमने कई बार देखा होगा? लेकिन कभी ये सोचा है कि वे ऐसे झूमती क्यों रहती हैं?...

वे झूमती हैं, लटकती हैं, मटकती हैं कि वे तुम्हें रोक सकें!... हाँ-हाँ रोक सकें कि तुम उन तक न पहुँचो! वर्ना तुम भी अपवित्र हो जाओगे उनकी तरह। भाई इन मोतियों की सुन्दरता ही मत देखो उनकी बात भी सुनो कि - 'श्लेष्मा (कफ या बलगम) में जो उत्पन्न हुए वे क्या सुन्दर होंगे?'

२३

सौरभ्यग्राहकतात्रास्तीत्यारादिहागता मुक्ताः।
गुणरोधोऽधरसङ्गः पृथ्व्या अपि नासिकाभिधाङ्गेऽभूत्।।

ज़रूरी नहीं कि उचित स्थान पर आपका मङ्गल ही हो! यहाँ भी आपके अहित साधने वाले हो सकते हैं भाई! अब देखिए - समय था कि सदाचरण की अद्भुत ग्राहकता के कारण इसके नज़दीक भी आने वाले मुक्त हो जाते लेकिन आज पृथ्वी की नाक जैसे नासिक में भी गुणों की अवज्ञा और नीच व्यक्तियों की भरमार हो गई।

अहह; सुगन्ध-ग्राहक हैं; बस इसलिए ही मोतियों ने युवतियों की नाक का आश्रय लिया था। लेकिन दुर्भाग्य; आते ही सोने की तार से बिंधे गए फिर नीच अधरों की सङ्गति भी हो गई। अब इठलाते रहो कि हम मोती हैं, लाखों में एक, बेशक़ीमत।

२४

अञ्जनरञ्जनवशतो हन्ताऽधररागसङ्गितायोगात्।
मुक्तानामप्यासीद् गुञ्जात्मकता तदत्र काऽन्यकथा।।

नवयौवना तरुणियों की आँखों के काजल; उनके अधरों के लाल-लाल और गुलाबी रंगों के फेर में पड़ कर यदि विगतकाम जीवन्मुक्त साधक भी घुँघची (जंगली झाड़ी का एक फल जो बैर के आकार में लाल-लाल फलते हैं किन्तु स्वाद और प्रभाव विष सा होता है) के समान हो जाते हैं तो हमारी आपकी क्या बिसात?

२५

अपराधोऽपि च सोढुं निर्मलहृदयस्य शक्यते रसिकैः।
किं मुग्धानामधरैः स्वकान्तदन्तस्तिरस्क्रियते।।

निर्मल हृदय वाले व्यक्ति का बड़े से बड़ा अपराध भी गुणी जन सह लेते हैं, अपराधों को नहीं गिनते, हँसकर टाल देते हैं। यही तो गुणियों की गुणज्ञता है। हाय;... नवयौवना नायिकाओं के सरस अधरों को तो ज़री देखिए!... अभी-अभी प्रियतम के जिन दाँतों ने उन्हें काट खाया है, क्या पुनः चुम्बन के उत्सुक उन्हीं दाँतों का वे तिरस्कार करेंगे?

२६

यदि सरसौ यदि सुहृदौ यदि साम्येनानुरागिणौ च नरौ।
मा तर्हि भेदभाजौ सुन्दर्योष्ठोपमं भवताम्।।

युवतियों के होठों से क्या कुछ नहीं सीखा जा सकता!... अब देखिए ना - दो व्यक्ति यदि समान रूप से एक दूसरे में सरस हों, मित्र हों, परस्पर अनुराग रखते हों तो उन्हें चाहिए कि वे कोई भेद आपस में न पैदा होने दें। जैसा कि तरुणियों के सरस, समरूप और समान लाली से युक्त होठों ने परस्पर भेद पैदा कर लिया और एक 'अधर' हो गया तो दूसरा 'अपर'। लेकिन 'दुर्गति' तो दोनों की ही होनी है।

२७

अपहारितं यदिष्टं तादृङ् न प्राप्यतेऽतियत्नेऽपि।
क्षयवृद्धिभागपीन्दुर्न कामिनीवदननीतशोभाढ्यः।।

लाख प्रयत्न कीजिए मनचाही वस्तु यदि किसी ने चुरा ली या रख ली तो फिर लाख कोशिशों के बावजूद वापिस नहीं मिलने वाली। अब देखिए ना - सुन्दरियों के मुख द्वारा चुराई गई शोभा वाला यह चन्द्रमा; हालाँकि अपनी शोभा घटाने और बढाने की इसमें अद्भुत क्षमता है, किन्तु लाख कोशिशों के बाद भी यह अपनी वह शोभा, वह कला नहीं प्राप्त कर पाता।

२८

स्वापेक्षया तु नीचैः सह संलापोऽपि नैव बत कार्यः।
सीमन्तिनीदृगन्तः श्रुतिरिव संयाति किं कदाप्यधरम्।।

स्वयं की अपेक्षा नीच व्यक्ति से सङ्गति क्या, कोई व्यवहार भी नहीं करना चाहिए। अहह क्या ही संयोग है; सुन्दरियों की बड़ी-बड़ी आँखों के दोनों छोर कानों की ओर ही आकृष्ट होते हैं। उन्हीं की सङ्गति को लालायित रहते हैं। कभी इन आँखों को अधरों की ओर आकृष्ट होते देखा है?

२९

सत्सङ्गे सत्यपि बत दुर्गुण एवाप्यतेऽन्यतो मुग्धैः।
श्रुतिगोऽप्युपैत्यपाङ्गः कौटिल्यं बालगं न संयमनम्।।

यद्यपि सत्सङ्गति चरित्र की उदात्तता का एक महनीय साधन है, लेकिन ध्यान रहे यदि सावधान नहीं रहे तो सत्सङ्गति के होते भी आप; भले ही कितना भी ज्ञानी क्यों न हो; गुणों को छोड़ दुर्गुण ही ग्रहण करते हैं।

ओ भलमानुष मृगनयनियों के अपाङ्गों को देखा है?... स्थायी रूप से ये कुटिल नहीं होते। अपने विस्तार के लिए ही कानों की ओर उन्मुख होते हैं और नितन्तर उसे प्राप्त भी करते हैं। किन्तु; चूँकि ये सावधान नहीं, अतः कानों पर लटक आए केशों से कुटिलता ही ग्रहण करते हैं, संयम नहीं।

३०

अभिलषितसिद्धिकामः प्रसादमेवाधिसाधयतु रागी।
न ह्यधरो द्विजवररुचिमनाप्य लभते स्वरागसाफल्यम्।।

अभिलषित पदार्थ चाहने वाला व्यक्ति प्राप्तव्य पदार्थ के प्रति चाहे कितना भी अनुरागी क्यों न हो; श्रेष्ठ जनों का अनुग्रह, उनकी कृपा प्राप्त करता रहे। अरे भाई; सुन्दरियों के अधरोष्ठ चाहे कितने भी लाल क्यों न हों, प्रिय के दाँतों की कान्ति जब तक न पड़े; उनके अनुराग की सफलता कहाँ? प्रिय के दाँतों के सम्पर्क से ही तो उनका अनुराग सफल होता है।

३१

मलिनोऽपि साञ्जनोऽपि च भूयः श्रुतिमेति युवतिलोचनवत्।
बालाग्रमात्रमपि परमालिन्यं स्फुटयितुं किलात्र खलः।।

दूसरों की रत्ती भर मलिनता को बतलाने, स्वयं चरित्र का मलिन और नीचता के कारण काला पड़ चुका कोई नीच व्यक्ति सदा ही दूसरों के कानों की ओर लपकता है।

मृगनयनियों की बड़ी-बड़ी, कानों की ओर ही और भी फैलती आँखों को देखकर तो मानों ऐसा ही कुछ प्रतीत होता है! स्वयं तो ये आँखें मलिन होती हैं; काजल-पुती होने से और भी घनी काली दिखती हैं, लेकिन बालों का तनिक कालापन क्या देख लिया; बस दौड़ पड़ीं कानों की ओर बालों की निन्दा करने।

३२

कुटिलैरपि मलिनैरपि बालैरपि सुमनसां च मुक्तानाम्।
सङ्गाद्यमनस्निग्धैरुत्तमपुरुषायिते धृता मुक्तिः।।

कुटिल-कर्मा, मलिन-चरित, बन्धन के कारण जिनमें प्रेम उत्पन्न हो गया हो ऐसे व्यक्ति और मूर्खों से मुक्ति तभी सम्भव है जब आप में उत्तम पुरुष के गुण आ जाएँ, आप उत्तम पुरुष की तरह आचरण करने लगें।

भाई;... कुटिल, मलिन, बँधे और तेल से चिकने बालों में गुंथे मोती और पुष्पों की मुक्ति, स्त्रियों के उत्तम-पुरुषायित (विपरीत-रति) हुए बिना कहाँ सम्भव है।

३३

मङ्गलनिजामृताम्बुधिमज्जनतः स्नेहसौरभव्याप्ताः।
अपि कुन्तलाः सतामपि चेतो न हरन्ति किं मुक्ताः।।

रूपवती तरुणियों के लहराते केश और जीवन्मुक्त; भला किसका चित्त नहीं हर लेते। अब देखिए ना —

परमानन्द-रूपी समुद्र में आकण्ठ मग्न रहने के कारण स्नेह-दया-सौख्य आदि से परिपूर्ण जीवन्मुक्त साधक और युवतियों के लहराते; उन्मुक्त केश, जो कि अभी-अभी शुभ-स्नान में अमृत तुल्य जल से धुले हैं, तैल और सुगन्धित द्रव्यों के कारण दमक और महक रहे हैं; - क्या सज्जनों के भी चित्त का हरण नहीं कर लेते?

३४

लब्धदृगन्तद्युतयः सुवर्णगुणभूषितोभयश्रुतयः।
अप्यान्दोलनलोलाः मुक्ता अपि चित्रमिह बद्धाः।।

तपस्या के अलौकिक तेज से दमकती आँखों वाले, शास्त्रों के श्रवण से परिपूत कानों वाले जीवन्मुक्त साधक भी काम-क्रोधादि विकारों के झंझावात में फँस उसी प्रकार बंध जाते हैं ज्यूँ सुन्दरियों के कानों में पड़े झुमकों की मोतियाँ।

बड़ी-बड़ी आँखों के सामीप्य से और भी सुशोभित, सोने के तारों में गुँथे, कुण्डल में पिरोये; कानों की शोभा बढ़ाने वाले ये मोती, कहने को तो मुक्त हैं लेकिन हैं तो बंधे ही।

३५

द्विजराजसङ्गतोऽपि च सरसोऽपि च कोमलोऽपि मधुरोऽपि।
शिव शिव रागित्वादिह नरः क्षतो मध्यमाधरश्चापि।।

व्यक्ति; चाहे कितनी भी उदात्त सङ्गति में क्यों न हो, सरस-हृदय, कोमल व्यवहार और मधुर स्वभाव वाला क्यों न हो, यदि अब भी उसमें किसी प्रकार का अनुराग अवशिष्ट है तो उसकी क्षति अवश्यम्भावी है।

सुन्दरियों के इन अधरों को ही लीजिए — दाँतों के साए में सुरक्षित हैं। इनकी सरसता, कोमलता और मधुरता के तो कहने ही क्या?... लेकिन हाय रे इनका राग (लाली) कि बस अपनी इस लालिमा के कारण ही तो बिचारे काट खाए जाते हैं।

३६

सद्वृत्तमपि सकण्टकमति मृद्वपि रागि गौरमपि साङ्कम्।
श्रुतिदृष्टिसङ्गशाल्यपि गृहीतबिम्बं कपोलवच्चित्तम्।।

मनुष्य-हृदय और युवतियों के कपोल; दोनों की प्रकृति एक सी होती है।...

अब देखिए ना - गोल; सुडौल भी युवतियों के गालों पर अनुराग की अवस्था में रोमाञ्च भर आते हैं। कोमल होकर भी अनुरागी होते हैं। स्वच्छ होने पर भी धब्बों से युक्त होते हैं और आँख-कान के होने के बावजूद प्रिय के विम्ब को स्वयं पर धारण करते हैं।

यही दशा मनुष्य के हृदय की है। सदाचरण करने वाला भी हृदय हमेशा कांटों से घिरा रहता है। कोमल होकर भी अनुराग से भरा होता है। स्वच्छ; पवित्र होकर भी कुछ न कुछ कालुष्य इसमें रहता ही है। और तो और श्रुतियों के ज्ञान तथा उदार दृष्टि के बाद भी किसी न किसी बिम्ब (मूर्ति) का आश्रय ले ही लेता है।

३७

सर्वामपि च वरतनुं स्वात्मनि बत गृहणतः क्व कण्टकतः।
लाभोऽभूद्भवति भवेत् खलस्य बालाकपोलस्य।।

सभी सुन्दर वस्तु, आकृति और रूपों को स्वयं प्राप्त कर लेने की निकृष्ट तृष्णा से किसी का हित न तो कभी हुआ है, न होता है और ना ही होगा।

अब देखिए ना - यौवन के उन्माद में तरुणियों के गाल जिस किसी भी सुन्दर आकृति को देख लाल हो उठते हैं! अनुराग से भर जाते हैं और उन सब आकृतियों के विम्ब को स्वयं में ठीक उसी प्रकार धारित करते हैं ज्यों कोई दुष्ट; नीच व्यक्ति संसार की सब सुन्दर वस्तुओं को खुदी का समझता है। इससे लाभ सम्भावित है या हानि?

३८

श्रुतिभूषणप्रभाकोऽप्यपाङ्गसञ्चारसङ्गरहितोऽपि।
चुम्बनचिह्नविहीनः किमिति न मान्यः कपोल इव धन्यः।।

संसार में दो पदार्थ धन्य हैं - एक तो युवतियों के अनछुए गाल और उन गालों के समान ज्ञानी व्यक्ति।

कानों में लटकते रत्नों से जिनकी रंगत और चढ गई है, यौवन से अपरिचित होने के कारण जो अभी कटाक्ष-व्यापार से भी अनभिज्ञ हैं, अनछुए हैं, युवतियों के ऐसे स्पृहणीय गाल और इन गालों के समान ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण, कामादि विकारों और उनके चिह्नों से विहीन व्यक्ति; दोनों ही क्यों न धन्य हों! सर्वजन-मान्य हों!

३९

निजपूज्यद्विजविरचितशासनहीनो नरः क्व मान्यः स्यात्।
मृगमदपत्रविचित्रोऽप्यबलायाः किल कपोल इव।।

अपने आदरणीयों के अनुशासन से हीन व्यक्ति और तरुणियों के गाल; दोनों ही तिरस्कार के पात्र हो जाते हैं।

रतिचुम्बन में प्रियतम के दाँतों से बनायी अनुशासन की लक्ष्मण-रेखा को पार करने वाले सुन्दरियों के गाल; भले ही वे कितने ही सुन्दर और विविध साज-सज्जा से अलंकृत क्यों न हों, -लोक के लिए तिरस्करणीय ही होते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे - अपने गुरुओं; आदरणीयों द्वारा विहित अनुशासन से हीन व्यक्ति; भले ही वह कितना भी आभिजात्य, धनी या गुणी ही क्यों न हो, कहीं भी सम्मान नहीं प्राप्त करता।

४०

हन्तानर्घ्यानपि हृदि रसरहितान् भर्त्सयन्ति खलु सरसाः।
तरुणीश्रवणाभरणगमणयोऽपि हि तत्कपोलघर्मजिताः।।

व्यक्ति कितना भी गुणी, विद्वान् या महान् क्यों न हो यदि उसका हृदय कोमल, सरस न हुआ; उसका यह सब होना व्यर्थ है! बल्कि वह तिरस्कार का पात्र है!

सुरत-क्रीडा के समय सुन्दरियों के कर्ण-आभूषण की मूल्यवान् मणियाँ उतनी मादक और स्पृहणीय नहीं होतीं जितनी उनके गालों पर उभर आयी और चमक रही

पसीने की बूँद; मादक और स्पृहणीय होती है। हो भी क्यों नहीं; अपनी सरसता से स्वेद-विन्दुओं ने नीरस मणियों को जीत जो लिया है, उन्हें तिरस्कृत जो कर दिया है।

४१

महिलाकपोलमण्डलमौक्तिकतः स्वेदविन्दुवृन्दमपि।
सम्पश्यतां सतामपि किमति न विकृत्तेऽपि रम्यताबुद्धिः।।

युवतियों के मोतियों से स्वच्छ कपोल-मण्डल पर दमकते पसीने की नन्हीं बूँदों को देख अच्छे से अच्छों का ईमान डगमगा जाता है। आश्चर्य है कि गालों पर प्रकट हो आईं पसीने की यह बूँदें यद्यपि कि शरीर के विकार से उपजती हैं, किन्तु हाय री जडता कि दाँतों से काटे-खरोचे भी इन गालों में मनुष्य सौन्दर्य ही देखता है।

४२

स्वल्पप्रसादलाभे सति न महाशा बुधेन सुविधेया।
नो चेत् क्षतिरतिरागाद् दृष्टमिदं किल सुतन्वधरे।।

बुद्धिमान् को चाहिए कि यदि कहीं से कुछ मिले तो उसी में सन्तोष करे, वहाँ से कोई बड़ी आशा न बाँधे अन्यथा हानि निश्चित है।

अब इन्हीं को देखिए ना सुन्दरियों के इन गालों और अधरों को!... थोड़े से प्रसाधन से इनके सौन्दर्य को प्रिय की सन्तुष्टि एवं प्रसन्नता का उपहार मिला। लेकिन हाय री लालच; इस उपहार से प्रफुल्लित आज अधरों ने स्वयं को ऐसा सजाया-सँवारा कि उन्हीं प्रियों के द्वारा आज काट खाए गए।

४३

उपलभ्य रहसि रसतः स्वकीयदोषं व्यनक्ति सौभाग्यम्।
किमियं वधूशिरोधिर्नहि नहि धौरेयधीरेव।।

सुखद एकान्त के क्षणों में, रस से सराबोर, प्रिय की विशाल भुजाओं को प्राप्त कर, अपने सौभाग्य को प्रकट करने वाले क्या ये नववधुओं के केशपाश हैं?

अजी नहीं!.... सुखद ऐकान्तिक क्षणों में अपना हित चाहने वालों के द्वारा स्वयं के दोषों; अवगुणों को जान कर, इस अवसर को सौभाग्य समझने वाली, यह सत्पुरुषों की बुद्धि है।

४४

स गुणी यः कण्ठस्थस्स च कण्ठो गुणवतैव यः श्लिष्टः।
स च मणिरपि यो गुणवान् गुणोऽप्यसावेव यो मणिमान्।।

अजी आभूषण तो वह है जो तरुणियों के गले से लगा हो और तरुणियों के कण्ठ भी तभी प्रशंसनीय हैं जब वे किसी गुणवान् (प्रिय या आभूषण) से आबद्ध हों। अब यों समझिए कि कोई रत्न तभी रत्न है, जब वह गुणवान् (धागे से बिंधा और उपयोग के योग्य) हो और कोई गुण (धागा) भी तभी गुण है जब वह किसी रत्न को धारण करता हो।

४५

गुणमयतयापि मा कुरु बुद्धे सञ्छादनं रहसि महतः।
मा तव कञ्चुक्या इव हिरण्यकशिपोर्दशा भूयात्।।

ओ बुद्धि! चाहे जितनी अच्छी औ' बड़ी हो जा मगर ख़बरदार; कभी भी किसी महान् व्यक्ति, सिद्धान्त या मूल्य पर पर्दा नहीं करना!!!... क्यों?... अजी इसलिए कहीं तेरी गत भी हिरण्यकशिपु सी चीड़ी औ' फ़ाड़ी चोली सी न हो जाए!...

देख; - बड़े-बड़े स्तनों को ढँकने वाली चोली अन्य अवसरों पर तो प्रशंसा की पात्र है मगर सुरत में स्तनों पर पर्दा करने का दण्ड उसे भुगतना पड़ता है! अरे स्तनों का मर्दन और नखों से उनका विदारण तो बाद में होगा; पहले तो ऐसे सरस स्तनों को छुपाए रखने की एवज़ में हिरण्यकशिपु के समान चोली का ही विदारण होगा ना!...

४६

तौ खल्विहपरलोकौ याभ्यामानन्द एव संलभ्यः।
किं भामिनीभुजौ तौ याभ्यां नालिङ्गितः कान्तः।।

जीवन इस लोक में हो या परलोक में आनन्दमय होना चाहिए। इहलोक या परलोक; यदि आनन्द देने वाले नहीं तो दोनों ही लोक व्यर्थ हैं।

ओ बन्धु!... सुन्दरियों की बाँहें कितनी ही गोरी हों, गुदाज़ हों, कोमल या गोल-मटोल हों, जिन बाँहों ने अपने प्रिय का आलिङ्गन न किया; आनन्द न लिया; उनका क्या लाभ?

४७

यौ स्वप्रेयःपदमिह सततं शान्त्यै मृदू निषेवेते।
तौ चेद् बोधविरागौ तर्हि सरागौ करौ धिगबलायाः।।

परमानन्द और आत्मिक शान्ति के लिए अपने प्रिय (परमात्मा) के पद-युगलों की सतत सेवा करने वाले बोध और विराग यदि मनुष्य में उपलब्ध हों तो युवतियों के अनुरागी (लाल-लाल) बाँहों की उसे क्या आवश्यकता?

४८

सुमनोऽभिगुम्फितत्वे गुणवत्वेऽपि च महान्न बत लङ्घ्यः।
बालावक्षोरुहगतमाला तन्मर्दनात् पुरा विकला।।

व्यक्ति कितना भी गुणी हो, लोकप्रतिष्ठित हो या श्रद्धास्पद हो किसी महान् व्यक्ति, सिद्धान्त या मूल्य की अवमानना नहीं करनी चाहिए। अन्यथा उसका मान-मर्दन अवश्यम्भावी है।

सुरत-काल में नववधुओं के स्तनों का मर्दन तो बाद में होगा, ऐसे उन्नत पीन-पयोधरों को ढँकने तथा लाँघने के अपराध में इन पर पड़ी माला की दुर्गति पहले हो जाती है।

४९

महताल्पस्य तु सत्कृतिरुपदेशायैव तन्यते यशसाम्।
मुक्ताः स्तनेन विधृताः शिरसि गुणित्वप्रकाशमुपदेष्टुम्।।

लाभ हो या न हो, श्रेष्ठ व्यक्तियों के द्वारा साधारण भी प्राणियों को दिया गया आदर-सत्कार उनका महत्त्व ही बढाता है, यश ही फैलाता है।

अब देखिये ना; प्रकृति ने स्वयं जिन्हें सौन्दर्य का उपहार दिया है ऐसी युवतियों के सर्वाङ्ग सुन्दर, सुडौल और उन्नत स्तन किसी आभूषण की अपेक्षा नहीं रखते! लेकिन सम्पर्क होने पर यह फूलों और मोतियों जैसी तुच्छ वस्तुओं को भी अपने शिर (अग्रभाग) पर धारण करते हैं।

५०

प्रकृतिः परीक्ष्य हेया महत्त्वलिप्सावता तु या नीचा।
गुरुतां विना कुचः किं मुक्तानामाश्रयो भवति।।

महत्त्वाकाङ्क्षी व्यक्तियों को चाहिए कि सावधानी पूर्वक अपने चरित्र पर विचार कर नीच प्रकृतियों का परित्याग करें, अन्यथा लक्ष्य-लाभ विरल है।

सर्वाङ्ग सुन्दर तरुणियों के स्तनों में उभार ही न हो तो मोतियों की माला भला क्या करे? भाई मोतियों की माला तो उत्तुङ्ग, पीन, कुच-कुम्भों पर ही फ़बती है और ऐसे कुच-कुम्भ ही मोतियों के आश्रय भी हुआ करते हैं।

५१

यदि गुणभरपरिपूर्णं किञ्चिद्रन्ध्रमपि वरं मन्ये।
हारत्वमेव याताः पयोधराभ्यां धृताः स्वहृदि मुक्ताः।।

गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति में यदि एक-आध अवगुण भी हों तो वे गुणों में समाहित हो जाते हैं, गुणवद् वैशिष्ट्य ही प्रकट करते हैं।

ज़रा इन मोतियों को देखिये!... मोतियों में एक ही अवगुण है कि उनमें छेद होता है। लेकिन गुणों की तो वे खान हैं ही। बस क्या था जैसे ही तरुणियों के कठोर, उन्नत और सुडौल स्तनों ने अपने अग्रभाग पर इन्हें धारण किया, अपने उन्हीं अवगुणों के बल पर ये मोतियाँ हार के रूप में परिणत हो गईं।

५२

अतिगुरुतरनिर्वाह्यः प्रश्नोऽल्पे क्वापि नैव कर्तव्यः।
वक्षोरुहे कुमार्या मुक्ताहारोऽपि यद्भारः।।

अल्पज्ञ के समक्ष दुरूह उत्तर वाले प्रश्न या अत्यन्त कठिनता से निर्वाह्य पक्ष नहीं रखना चाहिए। अब देखिए न —

किशोरावस्था और यौवन के सङ्क्रान्ति-काल में अभी-अभी जिन्होंने प्रवेश किया है ऐसी किशोरियों के स्तन; फूलों के हार का भार तो सह सकते हैं, मोतियों का हार तो उन पर भार ही है।

५३

स्वापेक्षयाऽतिमहता सहैव बत वादितोचिता भवति।
तत्र क्षतेऽपि भूषा स्वस्य च तत्कारिता येन।।

स्वयं की अपेक्षा श्रेष्ठ जन के साथ किया गया वाद-विवाद ही श्रेयस्कर होता है। अजी इसमें यदि ख़ुद का पराजय भी हो तो वह एक प्रकार का आभूषण ही होता है।

प्रमाण चाहिए?... युवतियों के वक्षःस्थल को देख लीजिए! सुरत-युद्ध में इन्होंने अपने से अधिक सामर्थ्य वाले वक्षःस्थल से विरोध मोल ले लिया। परिणाम ये कि प्रिय के हाथों ख़ूब मसले गए, नाख़ूनों से ख़ूब नोंचे; खरोचे गए। लेकिन यह सब क्षति उन पर आभूषण की तरह फ़बती है।

५४

सद्वासनोऽपि गुणवानपि च स्तब्धस्य सङ्गतः पतति।
हन्त स्तनप्रसङ्गात् विमर्द्यते मालतीहारः।।

व्यक्ति कितना भी सम्पन्न, सुदर्शन और गुणवान् क्यों न हो कुसङ्गति होने पर उसका पतन अवश्य होता है। अब देखिये न - मालती-फूलों से बने इस हार को!.... क्या ही इनका सुगन्ध! कैसा रूप; और क्या ही स्पर्श है! लेकिन देखते ही स्तब्ध कर देने वाले तरुणियों के उन्नत एवं कठोर स्तनों के सम्पर्क में आते ही, स्तनों के विमर्दन से पूर्व ही बिचारे मसल कर नोच फेंके जाते हैं।

५५

सद्वृत्तोऽपि च मुक्ताभरणोऽपि च भृतरसोऽपि च स्तम्भात्।
मुखकार्ष्ण्यमेत्य नियतं युवतिस्तनयुग्मवत् पतति।।

एक छोटा सा अवगुण भी बड़े से बड़े व्यक्ति के पतन में कितना बड़ा कारण होता है; इसे युवतियों के स्तनों से अच्छा और कौन जान सकता है।

मोतियों के हार सजे तरुणियों के यह स्तन कितने सुडौल, कितने मादक, सरस और मृदु होते हैं। लेकिन देखने वालों को अकस्मात् स्तब्ध कर देना, अचकचा देना; इनका एक बड़ा भारी अवगुण है, जो इनके मुख पर कलङ्क के रूप में प्रकट होता है और अन्ततः इनके विमर्दन और पतन का कारण बन जाता है।

५६

अन्तर्गूढरसोऽपि च काठिन्यादेव याति बहुघातम्।
तरुणीपयोधराभ्याम्महागुरुभ्यामियं मतिर्लभ्या।।

सरस, मनोरम, गुणी और सुदर्शन व्यक्ति भी अपनी बाहरी कठोरता के कारण शतशः आघात-प्रतिघातों को सहता है, प्रताडित होता ही रहता है।

आह!... कथञ्चित् यह बात युवतियों के उन बड़े-बड़े, गोल, सुडौल, उत्तुङ्ग स्तनों को भी समझ पड़ती जो अत्यन्त सरस, मनोरम और प्रियदर्शन होते हुए भी अत्यन्त कठोर हुआ करते हैं और शतशः आघात-प्रतिघात और मर्दन सहते हैं।

५७

सत्यप्यतुलमहत्त्वे यः काठिन्याद्भिनत्ति परहृदयम्।
सोऽवश्यं याति क्षतिमिति दृष्टं कामिनीस्तनयोः।।

अपने कठोर व्यवहार या आचरण से दूसरों के हृदय को चोट पहुँचाने वालों का परिणाम अगर जानना हो; युवतियों के स्तनों से जानिए!...

देखने वालों को अपनी उत्तुङ्गता एवं कठोरता से स्तम्भित, आश्चर्यचकित कर उनके हृदय को तार-तार कर देने वाले तरुणियों के यह उन्नत-पीन पयोधर अपनी इसी उत्तुङ्गता एवं कठोरता के कारण न केवल मसले जाते हैं, बल्कि नाख़ून से खुरचे; और कभी-कभी तो दाँतों से भी काट खाए जाते हैं।

५८

मुक्तावल्यवम्ब्यपि गुरुरपि सरसोऽपि नवकपटतोऽलम्।
हाऽच्छाद्यते सुदृग्भिस्तदसौ मुखकालिमानमेवैति।।

अपना कलङ्क छुपाने को व्यक्ति; स्तनों को छुपाती युवतियों के समान क्या कुछ उपाय नहीं करता?... लेकिन दोनों हैं कि छिपाए नहीं छिपते, प्रकट हो ही जाते हैं।

अब देखिए ना; - मोतियों की माला से विभूषित रहने वाले, अत्यन्त उन्नत, सरस, सुडौल और प्रियदर्शन इन स्तनों को जो युवतियाँ विविध भाँति और विविध प्रकार के नए-नए वस्त्रों से छिपाए फिरती हैं, सो निश्चित ही स्तनों के मुख की कालिमा के कारण। वर्ना ये छुपाने की चीज़ हैं?

५९

कार्यः सङ्गो महतां महद्भिरेवेह न क्वचिल्लघुभिः।
नो चेद्गुणभङ्गः स्यान्नह्याश्लेषे स्रजः स्वस्थाः।।

गुणवान् को चाहिए कि वह समान व्यक्ति से ही सङ्गति करे, गुणविहीन और अयोग्य व्यक्तियों की सङ्गति सभी गुणों का नाश कर देती है।

युवतियों के उत्तुङ्ग-पीन-कुच-कुम्भों पर पड़ी मालती-पुष्पों की माला को देखिए जिसने स्वयं से अयोग्य धागे की सङ्गति की। अब बताइये भला प्रेमी-युगल के सुरत-आलिङ्गन में यह माला कब तक सुरक्षित रह सकेगी?

६०

आविष्कृत्य स्वगुणं तत्र ग्रथनाय सुमनसां ग्रहणम्।
कर्तुं वीरश्चतुरो मालाकारः पयोधरश्चापि।।

व्यक्ति लक्ष्य का चुनाव करना; माला बनाने वाले माली और युवतियों के स्तनों से अवश्य सीखे। अब देखिए न - धागे को सुसज्जित कर उनमें गूँथने के लिये सुन्दर-सुन्दर फूलों के चुनाव में जितना चतुर और प्रवीण यह माली है, अपनी सीमा और प्रकृति में सर्वोत्कृष्ट स्वरूप को प्राप्त हुए यह उन्नत स्तन भी सहृदयों को लुभाने, ललचाने में उतने ही चतुर हैं।

६१

हन्त पयोधरमण्डलमतियातुं नैव युज्यते मुक्तैः।
रहसि विना पुरुषायितमतुलस्निग्धैर्यथाऽङ्गनाचिकुरैः।।

पयोधर-मण्डल (आकाश और उत्तुङ्ग स्तनों) का अतिक्रम कर ब्रह्मास्वाद-सहोदर आनन्द-प्राप्ति के लिए बड़े पौरुष की आवश्यकता होती है भाई!

देखिए ना - बड़े से बड़ा जीवन्मुक्त साधक भी शेष जीवन में सामान्य पुरुषों के आचरण बिना, आकाश-मण्डल का अतिक्रमण नहीं कर सकता अर्थात् ब्रह्मलीन नहीं हो सकता। जैसे तरुणियों के खुले; लहराते ये केश भी तब तक उन्नत, उत्तुङ्ग स्तन-मण्डलों का अतिक्रमण नहीं कर सकते जब तक वे सुरतकाल में 'पुरुषायित' (विपरीत-रति में प्रसक्त) न हो उठें।

६२

रे बालाः संयमनं त्यक्त्वा लोकेऽपि मलिनतावशतः।
स्फुटयन्तः कौटिल्यं कुरुध्वमतिलङ्घनं न गुरोः।।

ख़बरदार; ओ केशों! ओ बच्चों!!... अपनी मर्यादा; अपना संयम छोड़ मलिनता के कारण यह क्या समूची दुनिया में कुटिलता फैला रखा है?... सावधान अपनी इस मलिनता और कुटिलता के कारण कहीं गुरुओं (स्तनों) का अतिक्रम न कर बैठना!

६३

स्नेहभरादपि केशैः सद्वृत्तातिक्रमो न कर्तव्यः।
नो चेत्संयमभङ्गात् कौटिल्यं प्रकटमेव स्यात्।।

स्नेह कितना भी हो; मर्यादा का अतिक्रम कभी न करे, नहीं तो आपकी कुटिलता जगजाहिर हो ही जाती है।

अब देखिए न सुन्दरियों के घुँघराले केशपाश को!... तेल (स्नेह) से सराबोर हुए भी अपनी मर्यादा (सीधेपन) का अतिक्रम कर जाते हैं और संयम-भङ्ग करने के कारण उनकी कुटिलता (घुँघरालापन) प्रत्यक्ष हो उठता है।

६४

उच्चितहृदयजगमनं सुदृशां कुत्रापि नोचितं भवति।
स्यादन्यथा जगत्यप्यभिलाषः सर्वथा प्रकटः।।

नीतिज्ञ को चाहिए कि संयत और विशाल हृदय में उत्पन्न किसी रहस्य को औरों पर प्रकट न करे, वर्ना उसे प्राप्त करने की लालसा तो संसार को होगी ही।

अब देखिए न;... युवतियों ने भली-भाँति सँवारे और सँजोए अपने हृदय पर उपज आए इन उत्तुङ्ग, पीन, कुच-कुम्भों को दुनिया पर प्रकट नहीं करना था। लेकिन उन्होंने किया; बल्कि जान-बूझकर और कई उपायों से किया।

अब इन स्तनों में सबकी; बल्कि ऐरे-ग़ैरों की भी अभिलाषा तो प्रकट होगी ही।

६ ५

सद्वृत्तस्त्वं मा कुरु जातु स्तम्भात्परस्य संक्षोभम्।
इत एव कालिमाऽऽस्ये जातः किल कामिनीकुचयोः।।

सदाचरण (सद्वृत्त) वाले को चाहिए कि वह अपने इस लोकोत्तर गुण के बल पर किसी को क्षुब्ध न करे, अन्यथा बहुत भयावह परिणाम होते हैं।

युवतियों के इन स्तनों को ही देखिए! कितने सुडौल (सद्वृत्त), उन्नत, सरस और मनोरम हुआ करते हैं। लेकिन अपने इन्हीं गुणों से ये स्तन देखने वालों को क्षुब्ध कर देते हैं। ऐ भाई! इसीलिए तो इन स्तनों का मुँह काला पड़ गया।

६ ६

उरसि धृतोऽपि च हारैरलङ्कृतोऽप्यर्चितोऽपि चन्दनतः।
ललनास्तन इव पिशुनः काठिन्यं नैव हा त्यजति।।

लाख हृदय पर धारण करो, केसर औ' चन्दन के लेप से लेपे रखो, तिस पर भी न बन पड़े तो नौ-लक्खा हारों से सजा दो; लेकिन ना!... युवतियों के ये स्तन और पिशुन (दुष्ट व्यक्ति) अपनी कठोरता नहीं छोड़ सकते!

६ ७

महतां स्तब्धत्ववशात् स्वपरहृदयभेदनं किमिदमुचितम्।
हन्तानेनैवाभूद्गुणेन पतनं पयोधरयोः।।

सज्जनों को त्रस्त कर, उनके तो उनके; अपने हृदय को भी कष्ट पहुँचाना क्या उचित है? आकाश में विचरण करने वाले मेघों का पतन इसलिए ही तो होता है ना कि उमड़-घुमड़ इन मेघों ने महत्तत्त्व (आकाश) को घेर; उन्हें आतङ्कित कर दिया।

हाय;... मालूम है यौवन-भार से लदी-फदी युवतियों के स्तन भी कुछेक ही दिनों में ढीले क्यों पड़ जाते हैं? बस वही,... युवतियों ने भी वही अपराध किया। हुआ यह कि इन्होंने बड़े-बड़े इन उत्तुङ्ग स्तनों को विशेष प्रकार के बन्धन में बाँध कर; अपने हृदय को तो कष्ट पहुँचाया ही, देखने वालों को भी ख़ूब छकाया, ख़ूब उत्तेजित किया और उद्विग्न भी। और अब?... परिणाम देख लो।

६८

सत्यामपि गुरुतायां युक्तः स्तम्भः किमत्र सरसानाम्।
स्यादन्यथा ततो बत सुवृत्तभङ्गः क्षतैः कुचवत्।।

यदि आप में गुरुता हो तो अपने इस गुण द्वारा उन्नत स्तनों की भाँति किसी सरस, सरल-हृदय व्यक्ति को उत्तेजित, स्तम्भित या उन्मत्त न करें! हाय; एक समय आएगा कि यही क्षत और उन्मत्त-हृदय व्यक्ति युवतियों के स्तनों की उत्तुङ्गता की भाँति आपकी गुरुता को भी मसल देंगे, बिल्कुल गठरी बना देंगे!

६९

अपराधोऽपि लघूनां महद्भिरुच्चैर्विभूषणीक्रियते।
मृगलोचनास्तनाभ्यां नखक्षतं मस्तकेऽपि धृतम्।।

यही तो बड़ों का बड़प्पन है कि छोटों के अपराध को न केवल बिसरा देते हैं; बल्कि उन्हीं अपराधों को अपने सिर-माथे से लगाए भी फिरते हैं। मृगनयनियों के इन स्तनों को देखिए!... वाह बड़प्पन तो कोई इनसे सीखे! दुष्ट नाखूनों ने कैसा नोच-खसोट दिया इन्हें। लेकिन ये हैं कि उनके घाव को अपनी ऊँचाइयों पर धरते हैं।

७०

यद्यपि कठोरसङ्गात्तन्मण्डनकारिसुरभिरपि मर्द्यः।
स तथापि तत्र तनुते सुवासनामेव कुङ्कुमवत्।।

यदि संयोग से भी क्रूरों या कठोरों का साथ हो गया हो तब भी व्यक्ति को चाहिए कि वह अन्तिम समय तक अपनी उत्तम प्रकृति तो न छोड़े। संयोग से चम्पा-फूलों का युवतियों के कठोर स्तनों से साथ हो गया। पीछे रतिक्रीडा में जब स्तनों की कठोरता को मसला गया; बिचारी माला और इनके फूल!...

लेकिन क्या मज़ाल कि फूलों ने अपनी प्रकृति छोड़ी हो? अन्त-अन्त तक रति-शय्या को सुगन्धित करते रहे। इस सुगन्ध से और मदहोश; और मतवाले होते हाथ; कहने को मसलते रहे स्तनों की कठोरता। लेकिन यथार्थतः मसले जाते रहे फूल, मसले जाते रहे हार।

७१

मलिनेन महति युक्तं नो कर्तुं मण्डनं च सौरभ्यम्।
तत्किञ्चिन्मालिन्येऽप्येणमदः किं न मर्द्यते स्तनयोः।।

जो स्वयं मलिन हों उन्हें चाहिए कि वह दूसरे सुन्दर तथा रूपवान् की साज-सज्जा या उन्हें विशिष्ट बनाने से बचें, परहेज़ करें!... एण-मृग की नाभि से निकली कस्तूरी; हाय; मादक सुगन्ध से भरपूर। लेकिन है तो मलिन ही। अब इसे शौक़ चर्राया कि युवतियों के स्तनों का शृङ्गार करे। किया; बल्कि ख़ूब किया। लेकिन परिणाम?... हाय-हाय; स्तनों के मर्दन में बिचारी ख़ुद भी ख़ूब रगड़ी गई।

७२

गुणवत्त्वेऽपि क्षणमपि नैव गुरौ प्रत्यवस्थितिः कार्या।
तरुणीमौक्तिकहारे तत्करणाद् दृश्यते भ्रंशः।।

आप गुणों से ही क्यों न पिरोए हों; बड़ा जान किसी के आश्रय में न रहना! जिस दिन उस पर विपत्ति आई; आपकी ख़ैर नहीं!.... युवतियों के स्तनों पर इठलाते मोतियों के हार देखे हैं! बड़ा अभिमान था इन्हें कि धागों से गूँथे गए हैं। लेकिन जब प्रिय के मदोन्मत्त हाथ स्तनों की ओर बढ़े; उन पर पड़े, अब उन पर क्या बीती सो तो स्तन ही जानें! बिचारा हार? पहले वही तहस-नहस हुआ और ऐसा हुआ कि एक-एक मोती ज़मींदोज़ हो गए।

७३

रमणीकर्ण इव बहिः केशविकारोऽपि दुःखदः सुहृदि।
रहसि तु तस्याः कुचवत् क्षतमपि न गुरावपि क्षतये।।

थिरकते अङ्गों वाली युवतियों के कान में निकल आए बालों से आप उद्विग्न; अनमने हो जाते हो ना!... लेकिन शय्या पर; रतिक्रीडा के समय आपके ही नाखून से खुरचे, क्षत-विक्षत स्तन भी क्या आपको उसी तरह उद्विग्न करते हैं?....

अब समझे! व्यवहार की दुनिया में बाल बराबर भी आपका अपराध आपके चाहने वालों को उद्विग्न कर देता है। लेकिन अकेले में आपके भारी से भारी अपराध भी वे हँसी-खुशी सह लेते हैं, बल्कि ऐसे अपराधों से परम आनन्दित होते हैं।

७४

अहमपि दृढोऽतिगुणवानोजस्वीत्यस्य भूषणं कुर्याम्।
इत्यवहेल्यो न महान् क्षुद्रैर्मणिहारवद् गुणोच्छित्यै।।

यदि आप बली, गुणी या ओजस्वी हो तो भी कभी भूले से भी अन्य अलौकिक वस्तु या व्यक्ति की चापलूसी में उनसे सम्पृक्त न होना! तहस-नहस कर दिए जाओगे।

भरोसा नहीं तो प्रथम समागम में लथपथ युवती के स्तनों पर टिके हार का परिणाम देख लो -

हार में जड़े रत्नों को भी वही भ्रम था, कि वे दृढ हैं, गुणों (धागों) से गुँथे हैं और ओजस्वी भी हैं। बस इसी भ्रम में पहुँच गए थे अलौकिक सौन्दर्य की चापलूसी करने उसके स्तनों तक। हो गए तार-तार, तहस-नहस।

७५

दातुं रसं निजाय क्षतमपि पतनं च मर्दनं चापि।
शिव शिव वक्षोरुह इव सहते सद्वृत्त एव गुरुः।।

कभी तो निर्दयता पूर्वक मसले जाते हैं और कभी दाँतों, नखों से क्षत-विक्षत कर दिए जाते हैं। और तो और इतना कष्ट सहते हैं कि निढाल हो गिर भी पड़ते हैं।

हाय-हाय;... अपने प्रिय को आनन्द पहुँचाने के लिए युवतियों के ये बड़े-बड़े औ' सुडौल स्तन और स्तनों की भाँति सच्चरित्र शिक्षक क्या-क्या कष्ट नहीं उठाते?

७६

परतन्वी रमणीयाऽप्यनवेक्ष्या परपुमान्महानपि च।
तरुणी रोमावल्या किमीक्ष्यते स्तनयुगं च सा ताभ्याम्।।

जब तक अपनी या अपना न हो जाए, स्त्री और पुरुष; दोनों ही त्याज्य हैं। देखने लायक़ तक नहीं। जिनके लिए अपना दीनो धरम, ईमान, पद औ' प्रतिष्ठा तक दाँव पर लगा देते हो उन्हीं को देखो - तरुणियों की रोमावली क्या कभी स्तनों की ओर नज़र करती है? या स्तन कभी रोमावलि की ओर नज़र उठाते हैं?

७७

परचक्राणां मध्ये बल्यवलम्ब्येव सुस्थिरः क्षीणः।
अतएव मध्यमानां मध्यस्तादृग् बभूव किल।।

बाहरी संकट या विपत्ति में किसी बलवान् का सहारा लेकर ही निर्बल स्थिर; बल्कि सुस्थिर रह सकता है। यौवन से मचलते अङ्गों वाली किसी रूपसी को देखा है? उसके मध्यभाग; कमर को देखा है?...

इतने क्षीण; पतले होकर भी युवतियों के कटि इसलिए स्थिर हैं कि इन्होंने ऊपर से बड़े-बड़े, नुकीले और सुडौल स्तनों और नीचे से प्रशस्त गुरु-भार नितम्बों का अवलम्बन ले रखा है।

७८

मध्यस्थत्वं न विना गभीरतां नापि वाङ्निदानगताम्।
भीरूणां नाभिरतो भवति तथा भूरिभाग्येन।।

शास्त्रों और तत्परक सिद्धान्तों में गभीरता के बिना मध्यस्थता कहाँ? अब देखिए ना - वागुत्पत्ति के मूल की ओर प्रवृत्त होने के कारण ही तो युवतियों की नाभि अतिगभीर हुआ करती है; और इसी कारण मध्यस्थ भी। अन्यथा तो उनके मध्य-देश में और भी बहुत से अङ्गोपाङ्ग हैं किन्तु वे सब के सब 'मध्यस्थ' कहाँ?

७९

सा किं गुणमयता या न गुह्यमाच्छादयेत्स्वगुणयोगात्।
तदपि च किं गुह्यं यन्न गुणगणैर्गूहितं भवति।।

बहुत गुणों वाला होने से भी क्या लाभ यदि इन गुणों से अपना ही छिपाने योग्य दोष भी न छिपाया जा सके। और वे छिपाने योग्य दोष भी क्या जो गुणों से छिपाए न छिप सकें। नहीं समझे?....

युवतियों की नीवी देखी है? जी हाँ गुणों (डोरों) से बंधी ये नीवी ही है कि उनके गुह्य अङ्गों को छिपाने में समर्थ है और युवतियों के यह गुह्य अङ्ग हैं कि वे गुणों (डोरों) वाली नीवी से छिप भी जाया करते हैं।

८०

तुङ्गत्वं भगवत्वं सुरतालम्बित्वमतिमहत्त्वं च।
काञ्चीनिवासफलकं स्त्रीजघनस्येव सघनस्य।।

स्त्रियों का जघन हो सघन (साधक), यह काञ्ची; अर्थात् छोटे-छोटे घुँघरुओं से बनी मेखला और इस नाम की नगरी में निवास का ही फल है कि इन्हें तुङ्गत्व (गुरुता), भगवत्त्व (योनिसामीप्य और ईश्वर सी समानता), सुरतालम्बितत्व (उत्कट-मैथुन-सहायकत्व और समाधि) तथा अतिमत्त्व (अतिशय महत्त्व) यह गुण प्राप्त हो जाते हैं।

८१

द्वावपि यत्र समगुरू तत्र तु न क्वापि कापि विद्या स्यात्।
रन्तुर्नितम्बिनीनां नितम्बतः किं सुखं जघनतुल्यम्।।

दोनों ही जब तुल्य-बल, रूप, गुण, आकार और स्वभाव वालें हों तो उनके समक्ष कहीं भी और किसी का भी चारा नहीं चलता। अब देखिए ना - प्रशस्त नितम्बों वाली अपनी रूपसी के साथ रमण करने वाले प्रिय को जो आनन्द नितम्बों से प्राप्त होता है वैसा ही आनन्द क्या जाँघों से भी प्राप्त हो सकता है? या फिर जो आनन्द जाँघों से प्राप्य है वही क्या नितम्बों से प्राप्त हो सकता है?

८२

मृदुता सुवर्णताऽतुलनिर्मलताऽनुक्रमैककृशता च।
रम्भोरूरुसुजङ्घेऽनुल्लङ्घ्ये सद्वचस्यपि च।।

ओ भाई अपनी वाणी भी युवतियों की जाँघों की भाँति बना डालो और फिर देखो कि उन जाँघों की नाईं तुम भी कैसी ललचाई आँखों से देखे जाते हो!... नहीं समझे?

जाँघों की मृदुता की तरह वाणी में मृदुता पैदा करो! उनकी सुवर्णता की नाईं सुन्दर और स्पष्ट वर्णों का प्रयोग करो! जाँघों की अतुल निर्मलता की तरह वाचिक अभिव्यक्ति की अनुकूलता अपनी वाणी में लाओ और वर्णों; शब्दों का आनुपूर्वी उच्चारण और उसकी उच्चावचता इसमें पिरो लो!

८३

अतिसूक्ष्मगुणविचित्रा परमपवित्राऽऽवृता बहिर्गात्रा।
किमियं शाटी नहि नहि धीरवधूटीव साधुपरिपाटी।।

अत्यन्त सूक्ष्म गुणों (धागों) से पिरोयी होने के कारण मन को खींच लेने वाली, परम पवित्रा, चारों ओर बंधी, अङ्गों के बाहर लिपटी; क्या यह साड़ी है?...

नहीं-नहीं साड़ी नहीं! यह तो कुल-पुरुषों की अङ्गनाओं की भाँति साधु; सज्जनों की परिपाटी है।

युवतियों की साड़ी की तरह ही सज्जनों की परिपाटी भी अत्यन्त सूक्ष्म गुणों से अनुस्यूत अतएव आश्चर्यजनक, बहुत ही पवित्र, यम-नियमादि से नियन्त्रित और बाहरी दुनिया को दीख पड़ने वाली हुआ करती है।

८४

ध्वनिललितालङ्कारं मृदुलव्यापारमतुलसुकुमारम्।
एकं सत्कविकाव्यं सीमन्तिन्याश्च पदयुगं भव्यम्।।

ध्वनिमय ललित अलङ्कारों की सज-धज, मृदुल मनोरम व्यापारों की छटा और अतुल सुकुमारता या तो किसी सत्कवि के काव्य में या फिर किसी सौभाग्यवती स्त्री के पैरों में ही प्राप्त की जा सकती है।

८५

द्विजराजगविद्यायां यदि लिप्सा तर्हि याहि बहुधीरम्।
नहि सुन्दरी प्रमादैः हंसानां गमनमुपयाति।।

द्विजातियों की ब्रह्मविद्या और राजाओं की राजविद्या प्राप्त करनी हो तो ऐ भाई बड़ी धीरता की ज़ुरूरत पड़ेगी! बड़े धैर्य से सब सीखना होगा!

भरी जवानी वाली युवतियाँ; चाहे कितनी ही सुन्दर क्यों न हों यदि प्रमाद करें तो कभी भी हंसिनियों सी चाल नहीं पा सकतीं।

८६

यदि वाञ्छसि पाण्डित्यं प्रतिपदमालस्यमेव तर्हि जहि।
किं रमणीमञ्जीरं शिञ्जाने पटु जडं भवति।।

ओ भाई; यदि विद्या अर्जित करनी हो तो पग-पग पर यह आलस्य छोड़ दे! ग़ौर से सुन,... और गुन कि मदमाती जवानी वाली युवतियों के थिरकते कदमों में पड़ीं पाज़ेब और इनमें पड़ीं घुँघरुएँ क्या झनकने में कभी आलस्य करती हैं? हर क़दम, क़दम-दर-क़दम; कभी भी इन्हें झनकने से बाज़ आते देखा है?

८७

ध्वनिमाधुर्यनिपुणतां विना किमाप्येत सद्गतिस्तु जडैः।
रामानूपुरयुगले स्पष्टमिदं दृष्टमस्ति जनैः।।

वाणी में माधुर्य और निपुणता के विना भी क्या किसी की सद्गति हो सकती है?... अल्हड़ युवति के पैरों में पड़े पायल की घुँघरुओं को देखा है? बिलकुल जड; बेजान घुँघरुएँ। लेकिन हर पड़ते कदम पर वह मधुर ध्वनि कि अहह!...

८८

सुदृशां पदं विना किं रत्नतुलाकोटिरत्र कुत्रापि।
यल्लक्ष्मीवसतावपि पद्मे पद्मत्वमेतस्मात्।।

सुन्दरियों के चरण न पड़ें तो कारून् का ख़ज़ाना हो या कुबेर का, सोने का महल हो या हीरों की सेज़; सब बेकार है। लक्ष्मी का निवास पद्म (कमल) भी तभी पद्म है जब उस पर लक्ष्मी सी सुन्दरी का चरण पड़ता है।

अब ज़रा आपकी सुनिए!... बड़े विद्वान्, बुद्धिमान् और धनवान् हुए आप, जनाब हुआ कीजिए। जब तक आप स्वयं उदात्त दृष्टि वाले न हुए; सब बेकार है।

८९

सविमर्शमेव मन्दं मन्दमतुलमार्ग एव गन्तव्यम्।
किं तरुणीचरणाभ्यां गजेन्द्रगतिरन्यथा लब्धा।।

मदमस्त हाथी के समान धीमी चाल चलने वाली युवतियों के पैरों ने क्या यूँ ही यह मतवाली चाल पा ली?... ना ना; बड़े परिश्रम से इन्होंने यह चाल पाई है। इसलिए स्मरण रहे कि विमर्श-पूर्वक; हर उठते और रखते क़दम (कर्तव्य) की नाप और तौल, सन्तुलन और संक्रमण का विमर्श करते हुए प्रशस्त मार्ग पर ही धीमे-धीमे चलना चाहिए, अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए।...

९०

किञ्चिल्लालनशिक्षणसन्मार्गस्मारणैश्च धीः शोध्या।
तदनन्तरं स्वरसतो वशतां नेया नवोढेव।।

कुछ लाड़-प्यार और दुलार जताते, कुछ सरस-सरल और मनोरम सिखाते और कुछ सन्मार्ग का स्मरण कराते हुए; ठीक नई नवेली दुल्हन की तरह बुद्धि का भी संस्कार करना चाहिए और जब वह प्रसंस्कृत हो जाए तो फिर अपनी इच्छा के अनुकूल उसे अपने वश में कर लेना चाहिए।

९१

सदलङ्कारविलोभनवशा रसास्वादयोगतः क्रमतः।
मुग्धेव बुद्धिरादरसत्कारैः प्रौढतां नेया।।

मुग्धा युवति और बुद्धि, आदर एवं सत्कार से ही साधी जा सकती हैं। इसलिए कभी अच्छे-अच्छे वस्त्र एवं आभूषण देकर और कभी मैत्री-प्रणय-रति आदि रसों का आस्वाद कराते हुए आदर एवं सत्कार के साथ जैसे मुग्धा नायिका को साधते हैं ठीक उसी प्रकार (अलङ्कारों से अनुस्यूत सरस सुभाषितों द्वारा) बुद्धि को भी साधना चाहिए।

९२

गुरुभिरनुशासितानां नम्रत्वं भूरिभूषणायैव।
उद्गतपयोधरा चेत् द्यौरिव वनिता नतैवाढ्या।।

गुरुओं के द्वारा अनुशासित व्यक्ति में नम्रता भारी आभूषण है। अब देखिए ना - गुरुतर याने बड़े-बड़े पयोधर (स्तन) यदि प्रकट हो आए हों तो विनम्र (स्तन-भार से झुकी) युवतियाँ उसी प्रकार अच्छी लगती हैं जैसे बड़े-बड़े पयोधरों (मेघों) के भार से झुकी द्यौ (आकाश)।

९३

बाल्यं जिहासवो ये तैरनिशं हृदि सुवृत्तमेवेज्यम्।
मध्याभिरेव बुद्ध्या कुचमण्डलमण्डनं क्रियते।।

बचपने (मूर्खता) को छोड़ने की इच्छा वाले व्यक्ति को चाहिए कि वे रातो दिन अपने हृदय में सुवृत्त (ज्ञान, शील, चारित्र्य) की उपासना करें।

बचपने को छोड़ यौवन में प्रवेश करने वाली किशोरियों को देखा है? अहह; क्या रच-रच कर अपनी छाती और इन पर उपज आए स्तनों को सजाया, सँवारा करती हैं।

९४

दृष्टौ श्रुतिपरिशीलनमपि हृदये गुरुसमर्चनं सुचिरम्।
मार्गं निरीक्ष्य गमनं प्रौढत्वं लिप्सुभिः कार्यम्।।

प्रौढत्व प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को चाहिए कि दूरद्रष्टा होने के बावजूद श्रुति-सम्मत सिद्धान्तों का परिशीलन करें, हृदय में गुरुजनों के प्रति आस्था रखें एवं मार्ग का अनुशीलन कर उस पर चलें।

यौवन के हाव-भाव और परिपुष्ट अङ्गों के बावजूद युवतियाँ नित-दिन अपनी आँखों को कान की ओर प्रेरित कर विशाल बनाने का यत्न करती हैं। हृदय पर बड़े-बड़े स्तनों को न केवल धरतीं, बल्कि उनकी सज-धज पर तत्पर रहती हैं। दिखती राह भी यूँ चलतीं जैसे रास्ते को ख़ुदी में उतार रही हों।

९५

अस्फुटपरानुरागा स्वप्रेयोमात्रपूजनेऽभिरता।
युवतिर्मतिश्च विबुधैरसती त्याज्या सती पूज्या।।

पर में अस्फुट अनुराग वाली और अपने प्रिय-मात्र के आराधन में ही लगी रहने वाली युवति और बुद्धि सती है। बुद्धिमान् को चाहिए कि वह असती का परित्याग और सती युवति एवं बुद्धि सत्कार करे।

९६

दृष्टिर्विनता वाणी पीयूषेणैव पूरिता सुदृशाम्।
द्विजराजपोषकत्वं किमिति न तत्रानिशं भूयात्।।

झुकी-झुकी निगाहें और रस-पगी आवाज़, अहह;... यही तो युवतियों की पहचान है। अब झुकी हुई आँखों और अमृत-पगी आवाज़ वाली किसी सुन्दरी के मुख में; रात हो या दिन, सुबह हो या शाम, - हमेशा ही चन्द्रमा का भ्रम क्यों न हो भला?

ध्यान रहे युवतियाँ ही नहीं; *सुदृशां* का एक अर्थ साधु-पुरुष भी है जिसे चाहिए कि उसकी दृष्टि सदा विनत तथा वाणी अमृत से परिपूरित हो।

९७

निजनाथ एव नितरां निष्कपटेनैव सर्वदाऽऽराध्यः।
नो चेत्किं चातुर्यं नहि साध्वीभ्योऽपरा चतुरा।।

शीलवती स्त्रियों को चाहिए कि वे अपने प्रिय का ही सदा और निष्कपट भाव से उपभोग करें। अन्यथा उनकी चतुरता कैसी?...

कहते हैं साध्वी (शीलवती) स्त्रियों से अधिक संसार में कोई चतुर नहीं।

९८

आदौ गुर्ववलम्बस्तदुत्तरं भूरितररसास्वादः।
तदनन्तरमेव भवेद् भाग्यानन्देन कृतकृत्यः।।

ज्यों कामी प्रथम तो स्तन-जघन-नितम्ब आदि गुरुतर अङ्गों का अवलम्बन लेता है, फिर उनसे रति-रस का प्रभूत आस्वाद पाता है और इसके तुरत बाद सुरत-जन्य आनन्द से कृतकृत्य हो उठता है।

उसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि - प्रथम तो गुरु का अवलम्बन ले, फिर उनसे प्रभूत ज्ञान-रसों का आस्वाद प्राप्त करे। इसके बाद तो फिर भाग्य के आनन्द से उसे कृतकृत्य हुआ ही समझो।

९९

केशाच्च्युतसुमनश्च्युतिरपि रम्या निजरतिप्रचुरतृप्तौ।
यस्माद् हृदयग्रन्थेर्भेदाद् दृष्टिर्निरञ्जना भवति।।

सुरत का असीम आनन्द लेते हुए यदि प्रेमिका के बाल बिख़र जाएँ; पहने हुए हार टूटें और इनसे फूल बिखर जाएँ तो भी यह आनन्द के लिए ही तो है!... हो भी क्यों नहीं। इसी के बाद तो तरुणी के हृदय की ग्रन्थि (चोली की गाँठ) खुलती है और चुम्बन के कारण आँखों का काजल दूर हो जाता है। ठीक इसी प्रकार -

आत्मीय (परब्रह्म सम्बन्धी) रति की निःसीम तृप्ति हेतु यदि केशों की क्षति होती है तो हुआ करे, मन (आदि अन्तःकरणेन्द्रियों) नाश होता है तो हुआ करे। अरे इन्हीं सब क्षतियों के बाद तो हृदय की ग्रन्थि (माया की गाँठ) टूटती है और साधक की दृष्टि से काजल-सा अन्धकार दूर होता है।

१००

हृदयं क्षतमपि रतये सुदृशामधरोऽपि खण्डितः प्रीत्यै।
विवसनतापि रसाप्तेरनुपमपरितुष्टये भवति।।

ब्रह्मास्वाद-सहोदर रस की प्राप्ति हेतु नखों और दाँतों से क्षत-विक्षत हुए भी सुन्दरियों के स्तन आनन्द ही देते हैं। ऐसे किसी सुरत-रस की प्राप्ति हेतु दाँतों से खण्डित अधर भी प्रीति ही उत्पन्न करते हैं। अन्तिम आनन्द की प्राप्ति हेतु नग्नता भी परम आनन्द को प्रदान करने वाली होती है।

नव-यौवनाओं की सुरत-साधना के समान ही साधकों की परमार्थ-साधना होती है। परमानन्द की प्राप्ति के लिए साधक का हृदय क्षत-विक्षत हो उठता है, जप, नामानुस्मरण आदि से समदर्शी साधकों का अधर खण्डित हो जाता है और परब्रह्म की उपासना में उनके वस्त्र आदि भी विगलित हो जाते हैं। किन्तु यह सब उनमें परम आनन्द उत्पन्न करने वाला होता है।

१०१

निजदीर्घदृष्टिलाभात्तत्सम्भोगाच्च ना कृतार्थः स्यात्।
यत्राद्वैतानन्दं परमैक्यादचलतां याति।।

बड़ी-बड़ी आँखों वाली अपनी प्रेयसी को और उसके उस सम्भोग को प्राप्त कर मनुष्य उसी प्रकार कृतार्थ हो उठता है जैसे समत्व की दृष्टि और इस दृष्टि (समत्व) का उपभोग को प्राप्त कर साधक।

नहीं समझे,... द्वैत कहते हैं दो के भाव को। किन्तु सम्भोग की अवस्था में दो कहाँ होते हैं? बल्कि दो एकाकार हो जाते हैं। इसी परम एकाकारता को अद्वैत की अवस्था कहते हैं; अद्वैत याने परमानन्द।

लेकिन ओ भाई इस परमानन्द की प्राप्ति 'अपनी' ही प्रेयसी से सम्भव है! ठीक उसी तरह जैसे साधक को परमानन्द (ब्रह्मानन्द) की प्राप्ति अपनी ही दीर्घदृष्टि (समत्वदृष्टि) से प्राप्त हो सकती है। पराई से नहीं।

१०२

याभिः सह सुविलासादैहिकपारत्रिकोऽपि पुरुषार्थः।
नीतिभ्यश्च सतीभ्यो भूयस्ताभ्यो नमस्कुर्मः।।

जिनके साथ विलास-पूर्वक उपभोग, सम्भोग किए जाने से इस लोक के (धर्म, अर्थ और काम) तथा परलोक का पुरुषार्थ (मुक्ति) भी प्राप्त हो जाता है उन नीतियों और नीति के समान सती स्त्रियों को शतशः नमन।

॥इति रतिनीतिमुकुलः॥

परिशिष्ट

नीतिशतपत्रम्

परिशिष्ट में प्रकाश्य नीतिशतपत्र; अच्युतराव मोडक की एक विश्रुत रचना है। अनुष्टुब् छन्द में प्रणीत इस लघुकाय काव्य में कुल 104 पद्य हैं जिसके कारण हम इसे शतक के रूप में भी स्वीकार कर सकते हैं। वैसे शोध तथा अनुसन्धान परक अनेक ग्रन्थों में इसे *अच्युतशतक* के रूप में भी अभिहित किया गया है। *नीतिशतपत्र* की महत्ता का आकलन इस तथ्य से भी किया जा सकता है कि मोडक ने *अ.मञ्जरी* के समान इस शतक से भी दर्जनों पद्य *साहित्यसार* में उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया है। नीचे हम उन पद्यों को प्रस्तुत किए देते हैं जो *साहित्यसार* में *नीतिशतपत्र* से उद्धृत किए गए हैं -

(नीचे पद्यों के आगे पड़ी संख्याएँ हस्तलिखित प्रति में पद्यों की संख्याएँ हैं)

श्रीगौर्यालिङ्गितं वन्दे सुप्रसन्नं सदाशिवम्।
युक्तं गुहगणेशाभ्यां स्तुतं वेदैः सुरैरपि।।१।।

(मदीये नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-385)

हितेच्छुना तु कर्तव्यः सतामेव समागमः।
सरसानां सुमनसां षट्पदेनेव सर्वदा।।२।।

(मदीये नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-486)

गुणैरनेकैर्युक्तोऽपि दुष्टस्यैकस्य योगतः।
वर्ज्य एव पुमान्भूयाद्भुजङ्गस्येव चन्दनः।।३।।

(मदीये नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-509)

मूर्खताख्या पिशाचीयं यस्य चेतसि संविशेत्।
तमेव भ्रामयत्याशापङ्ककेऽप्यनिशं वृथा।।२१।।

(मदीये नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-528)

तारुण्यारोपितगुणे सुन्दरीभ्रूशरासने।
नम्रत्वमेव संपाद्य जगज्जयति मन्मथः।।५६।।

(मदीये नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-93)

सद्वृत्तमेव संसेव्य गुरवो लघवोऽपि च।
सर्वे वर्णाः समायान्ति सर्वार्थैः श्रुतियोग्यताम्।।३।।

(मामक एव नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-609)

तृष्णयैवाऽखिला दोषास्तच्छित्यैवाऽखिला गुणाः।
मोदाः सर्वे विद्ययैव शोकाः सर्वेऽप्यविद्यया।।९१।।

(मदीये नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-578)

यो निमेषमपि व्यर्थं प्राणान्तेऽपि न वै नयेत्।
तस्यैव विद्या सीस्याद्योगीन्द्रस्येव मुक्तता।।२५।।

(मदीये नीतिशतपत्रे, सा.सार, पृ.-486)

अस्तु, प्रस्तुत शतक-काव्य को *अ.मञ्जरी* के साथ प्रकाशित करने के पीछे कारण यह है कि इस शतक की एक हस्तलिखित प्रति हमारे संस्थान में वर्षों से सुरक्षित पड़ी है जिस पर संस्थान ने परिचयात्मक आलेख यत्र-तत्र प्रकाशित कराए थे।[1] इन आलेखों पर कार्य करते हुए यह ज्ञात हुआ था कि *नीतिशतपत्र* आज से 130 वर्ष पूर्व 1869 ई. में मुम्बई से सम्पादित हो कर प्रकाशित हुआ था किन्तु प्रकाशित प्रतियाँ इतनी दुर्लभ हैं कि इन्हें हस्तलिखित ग्रन्थों की श्रेणि में रखा जा सकता है।

प्रकाशित प्रतियों की दुर्लभता से प्रेरित हो कर हमने हमारे पास उपलब्ध पाण्डुलिपि का पाठ तैयार किया और प्रकाश्य *अ.मञ्जरी* के साथ ही इसे भी प्रकाशित करने की योजना बना डाली। इससे मोडक की दो कृतियाँ (चार शतक) एक ही पुस्तक में पाठकों को उपलब्ध हो जाएँगी।

नीचे इसकी हस्तलिखित प्रति से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है —

ग्रन्थनाम - नीतिशतपत्रम्, ग्रन्थकार - अच्युत, आधार - मिल कागज, लिपि - देवनागरी, साइज : २५-११, कुल पृष्ठ - ८, प्रतिपृष्ठ पंक्ति - ८, प्रतिपंक्ति अक्षर

---

1. *विशेष विवरण हेतु देखिए - मिश्र, प्रताप कुमार, अच्युतराय मोदक-कृत नीतिशतकम् की अज्ञात एवं दुर्लभ पाण्डुलिपि, पृ. 31-41.*

: ४२–४५, लिपिकार - अज्ञात, लिपिकाल - अज्ञात, अवस्था - प्राचीन, स्थिति - पूर्ण, विषय - साहित्य, रक्षित संख्या - हस्त.३२८.

विवेच्य हस्तलिखित प्रति के लेखन में चटक काली स्याही का प्रयोग किया गया है। पद्यों की संख्या को कालान्तर में पाण्डुलिपि के किसी प्रयोगकर्ता ने हल्की लाल स्याही से रंग दिया है ताकि पद्यों की संख्या स्पष्ट प्रतीत होती रहे। अक्षर सुवाच्य हैं और स्पष्ट रूप से पढे जा सकते हैं किन्तु लिपिकार की असावधानी से यह पुस्तक भी अछूती नहीं है अतः कभी-कभी एकाध मात्रा या अक्षरों की छूट दर्ज की जा सकती है।

अस्तु, हस्तलेख का प्रारम्भ निम्नवत् होता है —

।। श्रीशं वन्दे।। श्रीगणेशाय नमः।।

श्रीगौर्यालिंगितं वंदे सुप्रसन्नं सदाशिवं।
युक्तं गुहगणेशाभ्यां स्तुतं वेदैः सुरैरपि।।१

और ग्रन्थ का अन्त निम्नलिखित पद्य से होता है —

पांडुरंगाख्यहंसस्य गुरुपादाब्जशायिनः।
सौरभ्यायास्तु सततं तं नीतिशतपत्रकं।।१०४

हस्तलेख की अन्तिम पुष्पिका को निम्नवत् पढ़ा जा सकता है —

।।इत्यच्युतरचितं नीतिशतपत्रं संपूर्णं।।

इ0 यु0 पिं0 भ0 स्ति0।। श्रीमद्गरुडध्वजाय नमः।।

पाठ सम्पादन पद्धति

जैसा कि हम कह आए हैं *नीतिशतपत्र* की यह हस्तलिखित प्रति भी मात्रा तथा भाषागत अशुद्धियों से ख़ाली नहीं; अतः इसके पाठ सम्पादन हेतु हमने लिपिकार द्वारा प्रयुक्त अशुद्धियों के स्थान पर स्व-कल्पित शुद्ध पाठ रखा है। हम यह भी बता आए हैं कि *नीतिशतपत्र* मुंबई से प्रकाशित है। संयोग से यह प्रकाशित प्रति भी हमारे पुस्तकालय में सुरक्षित थी। मूल हस्तलेख के सम्पादन में जहाँ लिपिकार का अशुद्ध पाठ संशोधित करने में हमें परेशानी हुई, उन स्थलों पर हमने इस प्रकाशित प्रति की सहायता ली है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1869 ई. प्रकाशित *नीतिशतपत्र* में एक-दो पद्य ऐसे भी हैं जो बिना शुद्ध किए ही प्रकाशित कर दिए गए थे और वही अशुद्धि हमारी हस्तलिखित प्रति में भी है। ऐसे अशुद्ध पाठ को हमने हमारे कल्पित पाठ द्वारा शुद्ध किया है।

कल्पित-पाठ के स्थानापन्न मूल अशुद्ध पाठ को नीचे पाद-टिप्पणी में प्रस्तुत न कर ग्रन्थान्त में **पाठान्तर** शीर्षक में प्रस्तुत किया गया है। जिज्ञासु पाठकों को चाहिए कि वह ग्रन्थ के मूल पाठ हेतु सम्बन्धित शीर्षक की सहायता लें।

नीतिशतपत्र की प्रकृति एवं विषय-वस्तु

प्रस्तुत शतक में ग्रन्थकार ने नीति से सम्बन्धित भावों को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। शीर्षकों के आगे प्रदर्शित संख्या; उस शीर्षक से सम्बद्ध भावों पर लिखे गए कुल पद्यों की पाण्डुलिपि में प्रदत्त पद्य-संख्या है —

१. सज्जन–प्रशंसा	:	०२ से ०६ तक.
२. दुर्जन निन्दा	:	०७ से ११ तक.
३. यत्नवाद उपपादन	:	१२ से १६ तक.
४. मूढत्व निन्दा	:	१७ से २१ तक.
५. विद्याविघ्न	:	२२ से २६ तक
६. दुर्जन दुराराध्यता	:	२७ से ३१ तक.
७. धन–निन्दा	:	३२ से ३६ तक.
८. परस्त्री-सम्भोग निन्दा	:	३७ से ४१ तक.
९. तारुण्य-मद निन्दा	:	४२ से ४६ तक.
१०. अभ्यास माहात्म्य	:	४७ से ५१ तक.
११. नम्रता की प्रशंसा	:	५२ से ५६ तक.
१२. शान्तिप्रशंसा	:	५७ से ६१ तक.
१३. वाणी प्रशंसा	:	६२ से ६६ तक.
१४. अविवेक निन्दा	:	६७ से ७१ तक.
१५. कलावर प्रशंसा	:	७२ से ७६ तक.
१६. प्रमाद निन्दा	:	७७ से ८१ तक.
१७. क्रोध निन्दा	:	८२ से ८६ तक.
१८. तृष्णा निन्दा	:	८७ से ९१ तक.

१९. स्वधर्म प्रशंसा : ९२ से ९६ तक.

२०. भक्ति प्रशंसा : ९७ से १०१ तक.

२१. ग्रन्थ-समाप्ति सूचना : १०२ से १०४ तक.

इस प्रकार उपर्युक्त बीस विषयों पर कवि ने अपनी लेखनी चलाई है और पारम्परिक नीतिशतक'-लेखन की भाँति संस्कृत-साहित्य की परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए कालोचित जीवन एवं मूल्यों के परिष्कार एवं परिवर्धन को बख़ूबी रूपायित किया है। पारम्परिक नीति-विषयक लेखन से इसकी भिन्नता को यहाँ सङ्केतित करना हमारा प्रयोजन नहीं किन्तु ग्रन्थकार के इस नव-प्रयोग की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट अवश्य होना चाहिए।

जिन बीस विषयों से सम्बन्धित भावों को कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया है उनके निरूपण में उसकी भाषा और शैली बहुत ही सरस, रोचक तथा प्रभावपूर्ण बन पड़ी है। प्रत्येक भाव-विवेचन हेतु प्रयुक्त भाषा यूँ तो अत्यन्त प्रौढ एवं प्राञ्जल है किन्तु विवेच्य वस्तु तथा सम्बोध्य व्यक्ति को ध्यान में रखने के कारण मोडक की भाषा कभी-कभी अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं सरल हो जाती है। ऐसे में भाषा की सरलता और शैली की नवीनता ने सम्प्रेष्य भावों को बहुत ही रमणीय आकृति प्रदान कर दी है जिसके कारण समूचे शतक-काव्य के अनुवाचन तक कहीं कोई बोझिल वातावरण नहीं बनने पाता। दैनिक जीवन में जिन द्वन्द्वात्मक अनुभूतियों, हृद्गत भावों, मानसिक आवेगों, उच्च संवेगों तथा विविध कारणों से उच्चावच की स्थिति को प्राप्त होते विचारों को हम साक्षात् करते हैं उन्हीं की कभी स्तुति, तो कभी निन्दा, कभी तत्परक विधि तो कभी तत्सम्बन्धी निषेध; कवि की अपनी सूझ-बूझ और काव्य-चातुरी के कारण बहुत ही रोचक और मनोहारी हो गए हैं। भाषा-शैली के समान ही अपने विचारों के सम्प्रेषण हेतु कवि ने नीति जैसे दुरूह विषय को सर्वजन-बोध्य एवं ग्राह्य बनाने हेतु संस्कृत-साहित्य के सबसे प्रभावी छन्द अनुष्टुब् का प्रयोग किया है।

यहाँ शोध एवं अनुसन्धान की दृष्टि से एक परिचर्चा को उद्धृत करना उचित जान पड़ता है। मोडक ने *साहित्यसार* (पृ.-593) पर 'समासोक्ति' अलङ्कार को परिभाषित करते हुए कारिका संख्या-179 की टीका में निम्नलिखित एक पद्य को *नीतिशतपत्र* से उद्धृत बताया —

मलिनेऽपि रागपूर्णां विकसितवदनामनल्पतल्पेऽपि।
त्वयि चपलेऽपि च सरसां भ्रमर कथं वा सरोजिनीं त्यजसि।।

किन्तु हमारे पास उपलब्ध *नीतिशतपत्र* की प्रति में यह पद्य उल्लिखित नहीं है। वैसे ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि यह पद्य *नीतिशतपत्र* का हो भी नहीं सकता। कारण कि *नीतिशतपत्र* को मोडक ने केवल अनुष्टुब् छन्द में ही लिखा है। इसमें आर्या का कहीं कोई प्रयोग नहीं और ऊपर जिस पद्य को प्रस्तुत किया गया है वह आर्या में है। हाँ मोडक ने *अ.मञ्जरी* की रचना अवश्य ही आर्या छन्द में की है। हमारे पास उपलब्ध उपर्युक्त ग्रन्थ के तीनों ही मुकुलों में यह पद्य अनुपलब्ध है। आशा है भविष्यत्कालीन संस्कृत शोध-परम्परा के विद्यार्थी इस पद्य के मूल स्रोत का रहस्य उद्घाटित करेंगे।

अच्युतरावमोडकविरचितं

नीतिशतपत्रम्

श्रीशं वन्दे। श्रीगणेशाय नमः।

१

श्रीगौर्यालिङ्गितं वन्दे सुप्रसन्नं सदाशिवम्।
युक्तं गुहगणेशाभ्यां स्तुतं वेदैः सुरैरपि।।

अर्द्धाङ्गिनी भगवती गौरी से आलिङ्गित और पुत्रों; कार्तिकेय एवं गणेश की उपस्थिति से भरे-पूरे ('हम दो हमारे दो' के आदिम उदाहरण) उन भगवान् शिव को प्रणाम जो वेदों और देवताओं द्वारा स्तुत हैं।

२

हितेच्छुना तु कर्तव्यः सतामेव समागमः।
सरसानां सुमनसां षट्पदेनेव सर्वदा।।

ज्यौं भौंरा रसीले; छबीले फूलों की ओर ही लपकता है, त्यौं अपना हित चाहने वाले को भी चाहिए कि ज्ञानी किन्तु सच्चरित्र व्यक्तियों की ही सङ्गति करे।

३

सद्वृत्तमेव संसेव्य गुरवो लघवोऽपि च।
सर्वे वर्णाः समायान्ति सर्वार्थैः श्रुतियोग्यताम्।।

लघु होवें चाहे गुरु; ज्यौं किसी सुन्दर छन्द में ढले वर्ण अर्थों से सुसङ्गत हुए सुनने योग्य हो जाते हैं त्यौं ही व्यक्ति भी; चाहे वह नीच हो या महान्, अच्छे गुणों में ढलकर ही विद्याओं का अधिकारी होता है।

४

सर्वाभीष्टप्रदो नित्यं सन्मार्गेणैव गच्छताम्।
विचित्रमेतद् विद्वांस्तु जङ्गमः कल्पपादपः।।

कल्पपादप;... अजी वह तो निरा खूसट ठूँठ है!... न किसी ने देखा, न भाला! वह क्या किसी को मनचाहा देगा! मनचाहा तो विद्वान् देता है! सन्मार्ग के अनुगामियों को उनकी मनचाही वस्तुएँ तो ज्ञानी ही दे सकता है!

५

सतां सङ्गं विना कोऽपि लभेत्किं वाञ्छितं फलम्।
नहि सन्तापशान्तिः स्यात् पूर्णचन्द्रोदयं विना।।

सच्चरित्र व्यक्तियों की सङ्गति के बिना कोई भी अपने मनोवाञ्छित फल नहीं प्राप्त कर सकता। तपते दोपहर का मारा तब तक छटपटाता ही फिरता है जब तक पूर्ण चन्द्रमा की चांदनी से अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सम्पर्क न हो जाए।

६

साधूनां चरणाम्भोजपरागं भगवानपि।
वाञ्छतीत्यत एवेह वन्द्याः पद्माकरा इव।।

जिन्हें ईश्वर कहते हैं वे भी साधु-जनों की पद-धूलि सिर-माथे लगाने को लालायित रहते हैं। ऐसे सच्चरित्र, सत्कर्मा मनुष्यों को छोड़ मनुष्य ईश्वर के फेर में मन्दिर-मन्दिर मारा फिरता है। अजी वन्दना; अर्चना करनी हो तो खरबों-खरब के इन आकर की करो!... भग अर्थात् चिह्न मात्र धारण करने वालों से क्या मिलने वाला?

इति सज्जनप्रशंसा

७

खलास्तु दूरतस्त्याज्याः कण्टका इव सर्वथा।
येषां क्षणिकयोगेन सन्मार्गोऽप्यति दुःखदः।।

रास्ता कितना भी सुगम और लक्ष्य तक पहुँचाने वाला हो यदि इस पर चलते हुए एक काँटा भी चुभ जाए तो?... ज्यौं एक काँटा सुगम यात्रा और लक्ष्य को दुःखद बना देता है त्यौं ही नीच व्यक्ति का सम्पर्क भी सुगम जीवन-यात्रा और जीवन-लक्ष्य को नष्ट कर सकता है।

८

कल्याणेच्छुस्तु कः कुर्यात् कुवृत्तस्य कथामपि।
किं कोकिलोऽपि कलयेदाम्रेच्छुः पञ्चमं विना।।

स्वरों की समझ नहीं, गाने चले कल्याण?... अजी कल्याण-राग का गवैया भला कुत्सित स्वर की चर्चा भी क्यों करे? आमों के बौर की चहेती कोयल भी अगर पञ्चम (प) से ही स्वर उठाती है तो अपने कल्याण को चाहने वाला चेतन मनुष्य भला कुत्सित आचरण में क्यों प्रवृत्त हो?

९

स्वप्नेऽपि मास्तु कस्यापि दुर्जनस्य समागमः।
यस्मात्कुजस्य संसर्गाद् वैरं बुधसुधाभृतोः।।

प्रसिद्धि है कि मङ्गल दुष्ट ग्रह है। बिचारे बुध और चन्द्रमा इस दुष्ट ग्रह के सम्पर्क के कारण आपस में ही विरोधी हो गए। मिल गया दुष्टों से सम्पर्क का फल। प्रार्थना कीजिए कि स्वप्न में भी किसी दुष्ट का साहचर्य आपको प्राप्त न हो!

१०

गुणैरनेकैर्युक्तोऽपि दुष्टस्यैकस्य योगतः।
वर्ज्य एव पुमान् भूयाद् भुजङ्गस्येव चन्दनः।।

अनेक गुणों के बावजूद यदि एक भी दुष्ट व्यक्ति के सम्पर्क में आप हैं; यक़ीन जानिए आप उसी तरह डरावने हैं; अछूत हैं; ज्यौं साँप से लिपटा चन्दन का वृक्ष।

११

असतां मास्तु कुत्रापि विलोकनमपि क्वचित्।
चतुर्थीचन्द्रमीक्ष्यैव कृष्णोऽपि ह्यभिशापवान्।।

असद्; व्यक्ति हो या वस्तु हो या कुछ और, चाहिए तो यह कि इनसे कहीं और कभी भी पाला ही न पड़े। अज़ी यह चतुर्थी का चाँद ही था कि जिसे देखते ही बिचारे श्रीकृष्ण जी महाराज को भी शाप का सामना करना पड़ा।

* इति दुर्जननिन्दा *

📖

१२

आलस्यमेव प्रत्यक्षो मृत्युरस्ति शरीरिणाम्।
येन नैवास्ति भोगोऽपि नापि मोक्षः कदापि च।।

मनुष्य-जीवन के दो ही तो प्राप्तव्य हैं - सांसारिक भोग और संसार से मोक्ष। लेकिन यह आलस्य ही है जिसकी कृपा से मनुष्य को इनकी गन्ध तक नहीं मिलती। याद रखिए - "मृत्यु' मनुष्य की मृत्यु नहीं, आलस्य उसकी साक्षात् मृत्यु है।'

१३

यत्नेन किं न सिध्येत सुतरां सुधियां पुनः।
टिट्टिभस्यापि यत्नेन समुद्रोऽपि वशोऽभवत्।।

बुद्धिमान् प्रयत्न करता रहे तो क्या नहीं प्राप्त कर सकता?... टिटहरी, बिचारा सामान्य सा तुच्छ पक्षी लेकिन यह उसका प्रयत्न ही था कि समुद्र तक को उसके समक्ष झुकना पड़ा!...

१४

व्यर्थमायुर्न नेतव्यं कदाचिदपि धीमता।
चातकस्यापि यततो लभ्यं दिव्यामृतं खलु।।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आयु का एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दे बल्कि सतत प्रयत्न करता रहे, निरन्तर कर्म में तल्लीन रहे। चातक को देखिए, बिचारा पूरे वर्ष प्रतीक्षा में लगा रहता है और एक दिन स्वाति की बूँद उसे प्राप्त हो ही जाती है।

१५

दैवादेव पुमर्थः स्याद् इत्यान्ध्ये क्व सुखं भवेत्।
नहि ध्वान्ते सति प्राप्यं निकटेऽपि स्थितं धनम्।।

सांसारिक भोग-उपभोग को भी भाग्य के अधीन समझने वाले अन्धे भला क्या सुख प्राप्त करेंगे?... ज़रा सा भी अन्धेरा हो तो बग़ल में रखा धन नहीं दीख पड़ता। फिर इतना बड़ा अन्धेरा (अज्ञान) जिस पर छाया हो उसे क्या सुख प्राप्त होगा?

१६

प्रारब्धं नैव बलवत् पुण्यासादनरोधने।
प्रागुप्तसस्यं किं द्राक्षा रोपणेऽद्य विरुध्यति।।

पुण्य कर्मों के करने, उन्हें गति और विस्तार देने में प्रारब्ध (पूर्व-कर्म) कभी बाधक नहीं होते। पूर्व काल में बोया हुआ धान कालान्तर में अंगूर की बेल रोपने में क्या बाधक होता है?

*** इति यत्नवादोपपादानम् ***

१७

न मौर्ख्यसदृशं लोके विषं क्वाप्यवलोक्यते।
यदन्यान् स्वाश्रयं चापि भूयो मारयति स्फुटम्।।

सच पूछिए तो मूर्खता से तेज़ ज़हर इस संसार में शायद ही कहीं मिले! अब देखिए न - तेज़ से तेज़ भी ज़हर मुझ पर तभी प्रभावी होगा न जब वह मेरे रक्त से संचरित होगा? लेकिन मूर्खता!... शिव शिव; बिना रक्त में सञ्चरित हुए ख़ुद को तो मारती ही है बिचारे अपने ही आश्रितों और परायों का भी सर्वनाश कर देती है।

१८

किं नानानारकैः किं वा यमयातनयापि च।
यन्मौढ्यमेव सर्वाणि दुःखान्यासादयिष्यति।।

नाना प्रकार के नरक और उन नरकों में विविध प्रकार की यातनाओं से क्या घबराना? आपमें मूर्खता विद्यमान हो या फिर किसी मूर्ख की सङ्गति में आप हों तो समस्त नरक और नारकीय यातनाएँ आपको यहीं प्राप्त हो जाएँगी!

१९

अज्ञानतिमिरस्यैव प्रसादेनायमात्मनः।
मुक्ताहारोऽपि बहुधा भोगीन्द्रत्वं गतः किल।।

अज्ञान-रूपी अन्धकार का एक प्रत्यक्ष नमूना देखिए कि मनुष्य अपने ही गले में फ़बते मोतियों के महँगे हार को निज के ही हाथों से तोड़ फेंकता है, महज़ इसलिए कि अज्ञानवश उसे हार में सर्प का भ्रम हो गया।

२०

न मद्यं मादकं तादृङ् न कान्तानामपि काञ्चनम्।
यथेदमविवेकित्वं प्रत्यक्षेणानुभूयते।।

मदिरा हो या मदिरारुण आँखों वाली तरुणियों की स्वर्णिम छवि; इनमें वह सामर्थ्य कहाँ कि मनुष्य में वह उन्माद उत्पन्न कर सकें जो उसका अज्ञान, उसकी मूर्खता स्वयं उसमें उत्पन्न कर देती है।

२१

मूर्खताख्या पिशाचीयं यस्य चेतसि संविशेत्।
तमेव भ्रामयत्याशापङ्ककेऽप्यनिशं वृथा।।

मूर्खता रूपिणी यह पिशाची जिस भी मनुष्य के चित्त में घर करती है उस मन्दभाग्य को आशाओं के मकड़जाल में व्यर्थ ही आजीवन फिराया करती है।

* इति मूढत्वनिन्दा *

२२

स्वच्छन्दत्वं धनार्थित्वं प्रेमाभावोऽथ भोगिता।
अविनीतत्वमालस्यं विद्याविघ्नकराणि षट्।।

स्वच्छन्दता, धन-लोभ, प्रेम का अभाव, भोग-विलासिता, अविनय और आलस्य; विद्यार्थी को चाहिए कि इन छः विद्या-विघ्नों से सतत दूर रहे।

२३

यावद्गुरुपदाम्भोजेऽनुरागो याति नोदयम्।
क्व नाम तावत्सद्विद्यापद्मिनी प्रैति फुल्लताम्।।

गुरु के चरण-कमलों में जब तक अनुराग का उदय नहीं हो जाता तब तक सद्विद्या-रूपी कमलिनी का खिलना कहाँ सम्भव? विद्या रूपी कमलिनी को खिलाना हो तो गुरु के चरणों में अनुराग तो प्रकट करो!

२४

यस्य नास्ति समुद्योगो विद्यासम्पादने क्वचित्।
क्व सा तस्य नहि प्रेक्ष्या सुप्तैश्चान्द्रमसीकला।।

विद्यार्जन में जो तनिक भी उद्योग ही न करे तो भला उसे विद्या कहाँ मिलती है? अज़ी नींद में पड़ा व्यक्ति कहीं खिलखिलाते चाँद की दमकती चाँदनी का भी आनन्द ले सकता है?

२५

यो निमेषमपि व्यर्थं प्राणान्तेऽपि न वै नयेत्।
तस्यैव विद्या दासी स्याद् योगीन्द्रस्येव मुक्तता।।

वह विद्यार्थी जो प्राणों के मूल्य पर भी अपना एक क्षण व्यर्थ नहीं गँवाता विद्या उसी की दासी हो रहती है, ज्यों मुक्ति उस विकट योगी की जो एक क्षण भी गँवाए बग़ैर अपनी साधना में लीन रहे।

२६

सति तीव्रतमे कामे विद्यायां किं न सावशा।
ध्रुवेण बालकेनापि सम्पदासादिताऽचला।।

प्राप्ति की कामना तीव्र हो तो क्या प्राप्त नहीं होता! फिर यही तीव्र कामना विद्या की प्राप्ति में क्यों नहीं?... ध्रुव; नन्हें से बालक ने अपनी प्रबल कामना के बल पर विष्णु-साक्षात्कार की अचल सम्पत्ति प्राप्त कर ली।

*** इति विद्याविघ्नतत्साधनकथनम् ***

२७

न यत्नकोटिशतकैरपि दुष्टः सुधीर्भवेत्।
किम्मर्दितोऽपि कस्तूर्या लशुनो याति सौरभम्।।

लाख जतन कीजिए दुष्ट कभी भी उत्तम प्रकृति प्राप्त नहीं कर सकते। लहसुन को कस्तूरी से चुपड़ रखिए, सुगन्ध कभी नहीं आने वाली।

२८

अलं दुर्जनचित्तस्य सौजन्यात् प्रिययत्नतः।
नहि सन्तर्पितो दुग्धैरपि सर्पस्त्यजेद्विषम्।।

अजी इन प्रिय प्रयत्नों से दुर्जन के चित्त को सुन्दर बनाने से अब बाज़ भी आईये, मुए साँप को दूध पिलाने से क्या वह अपना ज़हर छोड़ देगा।

२९

हा हन्त हन्त पिशुनाराधनापेक्षया वरम्।
दावानलेऽप्यवस्थानं मरणं वाऽशनं विना।।

हाय-हाय; नीच व्यक्ति की सेवा-सुश्रूषा से तो कहीं अच्छा है कि मनुष्य दावानल में पड़ रहे। और नहीं तो भूखा-प्यासा मर जाए।

३०

को नु कुर्यात्कदाप्यत्र खलं निजवशं बुधः।
किमु कल्पान्तरेऽपि स्याज्जीवद्बकनिबन्धनम्।।

बड़े से बड़ा विद्वान् भी नीच व्यक्ति को अपने वश में नहीं कर सकता। कालान्तर में भी क्या जीवित बकासुर को वश में किया जा सकता था? नहीं ना!... इसीलिए तो कृष्ण ने उसके प्राण ही हर लिए।

३१

क्वचित् सर्पोऽपि मित्रत्वमियान् मूर्खस्तु न क्वचित्।
न शेषशायिनोऽप्यासीद्वशो दुर्योधनो हरेः।।

विचित्र विडम्बना है कि साँप सा ज़हरीला जानवर मनुष्य का मित्र हो सकता है किन्तु मूर्ख नहीं। विष्णु ने शेषनाग से विषधर को तो अपनी शय्या बना डाला किन्तु दुर्योधन को अपने पक्ष में मित्र न बना सके।

*** इति दुर्जनदुराराध्यतोक्तिः ***

३२

धिग्धिग्धनं महाऽनर्थनिधानं मोहसाधनम्।
स्त्रीसूनाद्यूतमद्यानां हेतुःस्थानं यतः कलेः।।

धिक्कार है; अनर्थों के घर, मोह के प्रबल साधन इस धन को धिक्कार है! क्योंकि यह धन ही तो है जो परस्त्री-संसर्ग, मांसादि अभक्ष्य भोजन, द्यूत तथा मद्य का प्रमुख कारण और कलि का निवास स्थान है।

३३

पण्डितोऽपि सुशीलोऽपि धनार्थी तृणतामियात्।
यथा बिसार्थी हंसोऽपि मधुपैरपि वञ्च्यते।।

व्यक्ति कितना ही विद्वान् हो; सुशील हो यदि धन का लोभी है तो उसका महत्त्व तिनकों से अधिक नहीं रह जाता। नीर-क्षीर-विवेकी हंस को देखिए; बिसतन्तु के लोभ में परागों पर उन्मुख भौंरों पर भी झपट पड़ते हैं, उनके उड़ जाने पर ठगे जाते हैं।

३४

द्रव्यज्वरातुराणां तु शान्तये नौषधाद्यपि।
नहि वृष्टिशतेनापि पाषाणादङ्कुरोदयः।।

धन-सम्पत्ति रूपी बुख़ार से माते मनुष्यों की शान्ति किसी भी औषध से सम्भव नहीं। सतत मूसलाधार बारिश ही क्यों न हो, पत्थर पर दूभ जमते कभी नहीं देखा।

३५

वित्तमत्तो हि नापीशं मनुते क्वेतरे सदा।
श्रीराममप्यनादृत्यागर्जद् रत्नाकरः किल।।

स्वयं ऐश्वर्यशाली भी ईश्वर को मानने, उनके सत्कार से विमुख हो उठते हैं तो फिर अन्यों की तो बात ही क्या? आश्चर्य है कि राम सम्मुख खड़े थे और उनका अनादर करता समुद्र गरज रहा था।

३६

यत् कुवर्णकहेतुस्तत् सुवर्णं कथमुच्यताम्।
नोचेत् कुमार्यपि जनैः सुमारीत्येव भाष्यताम्।।

अद्भुत विडम्बना है!... कुत्सित कर्मों में प्रेरित करने वाले सोने को लोग सुवर्ण अर्थात् सुन्दर वर्ण वाला कहते हैं। अजी अगर यह सही है तो फिर तो 'कुमारी' (कुत्सित मार अर्थात् गर्हित काम-भावना वाली) को 'सुमारी' (सुन्दर मार अर्थात् प्रशंसित काम-भावना वाली) कह कर ही पुकारना चाहिए।

* इति धननिन्दा *

३७

परस्त्रीस्मरणेनापि कोट्यनर्थागमः क्षणात्।
दृष्टौ कुलादिहन्तारौ हा दुर्योधनरावणौ।।

पर-स्त्री-सम्पर्क तो दूर की बात; उनके स्मरण-मात्र से भी पलक झपकते नाना विपत्तियाँ टूट पड़ती हैं। आह; रावण और दुर्योधन इसी तरह के पर-स्त्री लोलुप थे जिन्होंने बन्धु-बान्धवों समेत अपना सर्वस्व विनष्ट कर डाला।

३८

अन्यकान्तामिषान्मन्ये कृतान्तोऽवततार ह।
नो चेदिन्द्रादिदेवानामपि तद्विपदः कुतः।।

निश्चय ही पर-स्त्री के बहाने इस संसार में विपत्ति ने अवतार ग्रहण किया है। ऐसा न होता तो पर-स्त्री से सम्पर्क करने वाले इन्द्रादि देवताओं पर वैसी विपत्तियाँ क्यों आतीं भला?

३९

अयि प्रारब्धदुःखानि देहान्तान्यपि देहिनः।
परन्तु नेतरस्त्रीणां स्वप्नेऽपि कुरु संस्मृतिम्।।

कर्मों से उपजे दुःखों का अन्त है और मृत्यु के साथ इनका अन्त भी हो जाता है। किन्तु परस्त्री-लोभ एक ऐसा दुःख है जिसका अन्त मृत्यु के बाद भी सम्भव नहीं। इसलिए सपने में भी परस्त्री के स्मरण से दूर रहो।

४०

किञ्चङ्गमेयं मदिरा किं वा विषमहालता।
यद्वा ज्वालैव वडवानलस्य तरुणीमिषात्।।

समझ नहीं पड़ता कि यह तरुणियाँ शरीरधारी कोई मादक मदिरा हैं या साक्षात् विष-रूपी महा-लता? या फिर नवयौवना इन सुन्दरियों के बहाने बडवानल की प्रचण्ड ज्वाला ने ही कोई शरीर धारण कर लिया है?

४१

परनारी महामारी स्त्रष्ट्राऽकारि यतस्ततः।
किमित्येष पुनर्मृत्युः सर्वज्ञेनापि निर्मितः।।

आश्चर्य है!... सर्वज्ञ विधाता ने जब पर-स्त्री के रूप में महामृत्यु की सृष्टि कर ही दी तो फिर उसे किसी अन्य सामान्य मृत्यु के निर्माण की क्या ज़रूरत थी?

*** इति परस्त्रीसम्भोगनिन्दा ***

४२

तरुणः प्रायशः सर्वपापसम्पादको भवेत्।
नहि दारुगतो वह्निर्दहेद्दारूणि कुत्रचित्।।

जला कर राख कर देने की शक्ति तो वृक्षों में भी होती है किन्तु वृक्ष अपने ही कुल को कभी हानि नहीं पहुँचाते। किन्तु यह युवक हैं जो युवावस्था के आवेश में अपने ही कुल को हानि पहुँचाते हैं।

४३

यौवनाम्भोनिधिं को वा तरेज्ज्ञानप्लवं विना।
किं कोपशमनं क्वापि दृष्टं शान्त्युदयं विना।।

यौवन-रूपी अथाह सागर को ज्ञान-रूपी नौका के बिना कौन पार कर सकता है भला? सामान्य से क्रोध को भी मनुष्य तब तक पार नहीं कर पाता जब तक उसमें शान्ति का उदय न हो जाए।

४४

मातरं पितरं भ्रातृन् गुरूनपि युवाऽऽक्षिपेत्।
अतस्त एव पुरुषा ये धीरास्तरुणा अपि।।

यौवन के उन्माद में युवा अपनी माँ, अपने पिता, गुरुओं और भाईयों का भी अपमान कर देता है। पुरुष तो वह है जो तरुण होकर भी धीर है।

४५

तारुण्यमिव सर्वेषां स्त्रीपुंसामपि मादकम्।
मद्यमस्ति तथाप्येतन्नैवात्राऽविशति स्वयम्।।

स्त्री हो या पुरुष, सभी को मदमस्त कर देने वाले यौवन के समान ही मद्य भी एक नशीला पदार्थ है। मगर क्या आश्चर्य कि यौवन की भाँति मद्य स्वयं मदमस्त नहीं हो उठता।

४६

मन्ये मोहपिशाचस्य स्थानं यौवनदुर्वनम्।
यत्र कामादयः क्रूरा यातुधाना सहस्रशः।।

निश्चय ही मोह-रूपी पिशाच का निवास यौवन-रूपी घनघोर वन है, जिसमें काम-क्रोध-मद-लोभ-अहङ्कार आदि हज़ारों राक्षस भी स्वयं निवास किया करते हैं।

*** इति तारुण्यनिन्दा ***

📖

४७

अभ्यासेन न यत्सिद्धिस्तादृक् श्रेयोऽस्ति किं भुवि।
तस्मात्तदर्थिभिर्भूयोऽभ्यास एवावलम्ब्यताम्।।

संसार में कोई ऐसी श्रेयस्कर वस्तु नहीं जो अभ्यास के द्वारा प्राप्त न की जा सके। इसलिए श्रेयस्कर वस्तुओं को प्राप्त करने वाले को चाहिए कि वे निरन्तर अभ्यास करते रहें।

४८

अभ्यासादेव पवनं भक्षयन्त्येव केचन।
तरन्त्यम्भोधिमप्येके सहन्तेऽपि विषादिकम्।।

यह अभ्यास का ही माहात्म्य है कि कुछ लोग केवल वायु को पीकर ही दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं, कुछ सागर को भी पार कर लेते हैं तो कुछ विष आदि का प्रभाव भी सहन कर लेते हैं।

४९

अभ्यासिनामेव लभ्या अपि विद्याश्चतुर्दश।
अप्यर्कमण्डलं भित्वाऽभ्यासिनैवेह गम्यते।।

निरन्तर अभ्यास के द्वारा ही मनुष्य चतुर्दश विद्याओं का भी वेत्ता हो जाता है। यह अभ्यास ही है जिसके बल पर योगी सूर्य-मण्डल को भेद कर आत्मा को परमात्मा में भी विलीन कर लेता है।

५०

अभ्यासस्य प्रसादेन वायोरपि जयो भवेत्।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां भाजनं भवति ध्रुवम्।।

जी हाँ, यह अभ्यास ही है कि मनुष्य प्राण-वायु पर विजय प्राप्त कर मृत्यु को भी जीत लेता है और अणिमा, महिमा आदि आठ सिद्धियों का स्वामी हो उठता है।

५१

अभ्याससदृशं नैव लोकेऽस्ति हितसाधनम्।
अतः स एव कर्त्तव्यः सर्वदा साधुवर्त्मना।।

इस संसार में अभ्यास जैसा कोई भी दूसरा ऐसा साधन नहीं जिससे मनुष्य अपने हितों को, अपने लक्ष्य को यथावत् प्राप्त कर सके अतः मनुष्य को चाहिए कि वह उचित मार्ग का अवलम्बन ले, निरन्तर अभ्यास करता रहे।

*** इति अभ्यासमाहात्म्यम् ***

५२

सद्वंशजत्वं साद्गुण्यं शूरहस्तङ्गतापि च।
पुरुषस्य च चापस्य नम्रत्वादेव लक्ष्यते।।

श्रेष्ठ वंश (कुल और बाँस) से उत्पत्ति, अच्छे गुणों का भाव और शूरों के हाथ पड़ने पर स्थैर्य, यह सब के सब पुरुषों और धनुषों की विशिष्ट विनम्रता देख कर ही ज्ञात हो जाते हैं।

५३

महान्त एव नम्रत्वं समृद्ध्या यान्ति नाल्पकाः।
दृष्टमाम्रादिषु स्पष्टं बर्बुरादिषु च क्रमात्।।

समृद्धि के साथ-साथ विनम्रता महान् लोगों का ही गुण है, अधमों का नहीं। आम जैसे-जैसे अपने फलों से लदता है वैसे-वैसे झुकता चला जाता है, लेकिन बबूर को कभी झुके देखा है?

५४

नत्या व्याघ्रोऽपि वशतामेतीति सुजना जगुः।
ततः सैवातियत्नेन पुरुषैः साध्यतां भृशम्।।

अनुभव-वृद्धों का मानना है कि झुके रह कर बाघ को भी अपने वश में किया जा सकता है इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह प्रयत्न पूर्वक विनम्रता को साधता रहे।

५५

रूपं विद्या धनं धर्मोऽप्यफलः स्याद्विना तु यम्।
विनयोऽसौ न कैर्वात्र सम्पाद्यः स्याद्धितैषिभिः।।

रूप, विद्या, धन और यहाँ तक कि धर्म भी जिसके अभाव में निष्फल हैं, हितेच्छु व्यक्ति उस विनय की साधना अवश्य करता रहे।

५६

तारुण्यारोपितगुणे सुन्दरीभ्रूशरासने।
नम्रत्वमेव सम्पाद्य जगज्जयति मन्मथः।।

यौवन-रूपी डोर पर सुन्दरियों के भ्रू-रूपी बाण को कानों तक खैंच (सुन्दरियों की झुकी हुई नज़रों से ही) कामदेव संसार जीत लेते हैं।

*** इति नम्रत्वप्रशंसा ***

५७

शमकल्पद्रुमस्यैव फलान्येतानि यद्धरा।
मृद्रूपाप्यभवत् पत्नी नूनं लक्ष्मीपतेरपि।।

शान्ति या क्षमा-रूपी वृक्ष का ही फल है कि यह पृथ्वी, धूल-मिट्टी की होती हुई भी स्वयं लक्ष्मी-पति भगवान् विष्णु की पत्नी हुई।

५८

दुःखलेशोदयोऽपि क्व रमतां शान्तिकान्तया।
नहि भाति शरत्पूर्णचन्द्रे दाहकता क्वचित्।।

शान्ति रूपी कान्ति से देदीप्यमान् व्यक्ति में दुःख का लेश मात्र भी कैसे सम्भव?... शरत्-पूर्णिमा के चाँद में दाहकता भला आए भी तो कहाँ से और कैसे?

५९

शाखीन्द्रानखिलान् हित्वा रामेणापि पुरा शमी।
शाखीश्वरोऽर्चितो लङ्कापुरादिविजयार्थिना।।

हालाँकि बड़े से बड़े उत्कट वीर वानर थे, मगर लङ्का पर विजय की कामना वाले राम ने शान्तिप्रिय वानर-राज सुग्रीव से ही मैत्री स्थापित की।

६०

गुणकोटियुतोऽप्यत्र न विभाति शमं विना।
नरो राजकरस्थोऽपि यथेष्वासः शरं विना।।

असंख्य गुणों के होते हुए भी मनुष्य एक मात्र शम-गुण के अभाव में उसी प्रकार शोभित नहीं होता जैसे राजा का प्रिय-पात्र भी सैनिक बिना धनुष बाण के।

६१

शान्तिचिन्तामणिस्रक् तु यस्य हृद्यस्ति सर्वदा।
स सर्वपुरुषार्थश्रीवरणीयो न किं भवेत्।।

शान्ति-चिन्तामणि रूपी हार जिसके हृदय पर वर्तमान हो, उस नर-श्रेष्ठ को धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ स्वयं वरण किया करते हैं।

*** इति शान्तिस्तुतिः ***

६२

इयं पुण्याब्धिकन्यैव मन्ये वाक्चातुरी छलात्।
वृणोति विबुधान् हित्वा पुरुषोत्तममेव यत्।।

पुण्य-रूपी सागर की यह कन्या (लक्ष्मी) ही मानों वाक्चातुरी (वक्तृता) के बहाने अन्य समस्त देवताओं को छोड़ पुरुषोत्तम का वरण करती है।

६३

न धनी न बली नापि शूरो न बलवानपि।
तथा भाति यथा वक्ता सभायां पिकवद्वने।।

धनवान्, बलवान्, शूर-वीर; यहाँ तक कि गुणवान् को भी सभा में वह आदर नहीं मिलता जो विद्वान् वक्ता को वन में कोकिल के समान सहज प्राप्त हो जाता है।

६४

यस्य वाण्यस्ति मधुरा तस्यैव सफलं तपः।
नो चेज्जीवन्ति पशवोऽप्यनिशं पुष्टिशालिनः।।

जिसकी वाणी में मधुरता हो जीवन उसी व्यक्ति का सफल है। अन्यथा बड़े-बड़े बलशाली, हृष्ट-पुष्ट और विशालकाय पशु भी जीया ही करते हैं।

६५

सालङ्कारोऽपि सरसः सगुणोऽपि पुमानिह।
प्रबन्ध इव वक्तृत्वं विना नूनं जडो न किम्।।

विविध अलङ्कारों, रसों और गुणों से ओत-प्रोत हो कर भी पुरुष और प्रबन्ध दोनों ही वक्तृता (सुन्दर वचन और सूक्ति) के अभाव में निःसार हुआ करते हैं।

६६

वाचः सौष्ठवमावेक्ष्य सुधा प्रायः सुधाऽभवत्।
सुधाधरोऽपि नो तद्वद् वाग्मी द्विजमुदे यथा।।

यह वाणी ही है जिसके माधुर्य के समक्ष अमृत भी सुधा यानी ईंट-पत्थर या चूने सा जान पड़ता है। आश्चर्य तो यह कि स्वयं अमृतात्मा चन्द्रमा भी विद्वानों को वह आनन्द नहीं देते जो एक वाग्मी; एक मधुर वक्ता दे देता है।

*** इति वाणीप्रशंसा ***

६७

कदापि साहसं नैव कर्तव्यं पुरुषैर्यतः।
जीवितस्यापि नाशः स्यात्तस्यैव कृपया किल।।

मनुष्य को अविवेक-पूर्ण साहस कभी नहीं करना चाहिए। अविवेकी साहस का ही परिणाम है कि मनुष्य अपने प्राण तक गँवा बैठता है।

६८

स्वल्पं महद्वा यत्कर्म विचार्यैव तदाचरेत्।
अविचारेण नाचारस्तिरश्चामपि दृश्यते।।

कर्म नीच हो या उदात्त, सम्यग् विचार के बाद ही सम्पादित करना चाहिए। बिना बिचारे तो बिचारे कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी तक अपना आचार सम्पादित नहीं करते।

६९

विवेकस्यैव दास्यस्ताः सकला अपि सम्पदः।
निखिलास्तारका यद्वच्छरद्राकाकलानिधेः।।

संसार की समस्त सम्पत्तियाँ महज़ विवेक की ही तो दासियाँ हैं, ज्यों आकाश की समग्र ताराएँ शरच्चन्द्रमा की दासियाँ।

७०

अहो विवेकराज्यस्य कृपयैवाखिला नराः।
संसारवारांनिधिमप्युत्तरन्त्येव तत्क्षणात्।।

यह विवेक-रूपी राज्य का ही सुप्रबन्ध है कि मनुष्य संसार-रूपी अगाध सागर को भी क्षण-मात्र में पार कर लेता है।

७१

अविवेकिनमालोक्य तथा खिद्यति मे मनः।
कुम्भीपाकादिनरकाऽऽनुभवैरपि नो यथा।।

अविवेकी मनुष्य को देख मेरा हृदय जिस तरह दुःखी हो उठता है, वैसा ही दुःख तो मुझे कुम्भीपाक आदि नरकों की घनघोर यातना की कल्पना से भी नहीं होता।

*** इति अविवेकनिन्दापूर्वकविवेकस्तुतिः ***

७२

विबुधानां सभायां तु कलावानेव राजते।
हरस्तानखिलांस्त्यक्त्वा तमेव शिरसा दधौ।।

देवताओं की सभा में निश्चय ही चन्द्रमा श्रेष्ठ था, क्योंकि वह कलाओं से परिपूर्ण था। यही कारण है कि शङ्कर ने अन्य सभी देवों को छोड़ उसी कलावान् को अपने शिर पर धारण किया।

७३

यां सर्वेऽपि दिदृक्षन्ति जनाः सैव कला किल।
लाञ्छनस्यैव वैशद्यं याभिस्ता विकला न किम्।।

जिसे सब देखना चाहें यथार्थतः वही कला है। जिस कला से कलङ्क और कलङ्क की प्रगाढता ही प्रकट हो वह भला कैसे कला हो सकती है। उसे तो विकला ही कहना उचित होगा।

७४

पक्षिणाममृतावाप्तिः पाषाणानामपि द्रवः।
सारस्यं पुण्डरीकाणां जायतेऽहो कलावता।।

यह कलावान् (चन्द्रमा) ही है कि जिसके प्रभाव से पक्षियों को भी अमृत की प्राप्ति हो जाती है (चातक), पत्थर भी पिघल उठते हैं (चन्द्रकान्त-मणि) और रक्त कमल भी सरस हो जाते हैं।

७५

कलावन्तमुपाश्रित्य जीवन्ति विबुधाः किल।
अमृतात्मकताऽत्रैव यदस्ति तिमिरापहे।।

यह कलावान् (कलाओं का ज्ञाता और चन्द्रमा) ही है जिसका आश्रय ले विबुध (विद्वान् और देवगण) जीवित हैं। कलाओं से जब (अज्ञान-रूपी) अन्धकार नष्ट हो जाता है तभी तो विबुधों (देवों और विद्वानों) को अमृत की प्राप्ति होती है।

७६

कलावते नमस्तस्मै यत्पादैः शारदागमः।
स्फुटीभवति लोकानां सर्वेषामपि मङ्गलैः।।

कलावान् (कलाओं के ज्ञाता और चन्द्रमा) को प्रणाम कि जिसकी निर्मल किरणों से समग्र संसार को शारदागम (ज्ञान और शरद् ऋतु के आगमन) का भान होता है।

*** इति कलावत्प्रशंसा ***

७७

दुःखार्णवसहस्राणि प्रमादेन पदे पदे।
प्रत्यक्षमुपलभ्यन्ते स कार्योऽतो न कुत्रचित्।।

यह प्रमाद ही है जिसके कारण मनुष्य का जीवन नाना प्रकार के दुःख-रूपी समुद्रों से घिरा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है अतः मनुष्य को चाहिए कि प्रमाद न करे।

७८

मृत्युं प्रमादमेवाह भगवान् बादरायणः।
तस्मात्तद्ध्वंसने दक्षो यः स मृत्युञ्जयो भवेत्।।

भगवान् बादरायण ने तो प्रमाद को साक्षात् मृत्यु ही घोषित किया है। इसलिए जो व्यक्ति प्रमाद पर विजय प्राप्त करे वही मृत्युञ्जय है।

७९

प्रमादिनां न वित्तानि न विद्या वनिताऽपि न।
नहि मद्यजुषां क्वापि साधनान्यथ धीश्च ह्रीः।।

प्रमादी मनुष्य को न तो विद्या, न धन-सम्पत्ति और न ही सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है। ठीक उसी प्रकार ज्यों किसी शराबी के पास न तो साधन, न बुद्धि-विवेक और न ही लाज-शर्म रह जाती है।

८०

शङ्के कृतान्तदंष्ट्रेयं या चित्तेऽनवधानता।
क्षणात्तृणीकरोत्येव यतः साऽगणितान् गुणान्।।

मनुष्य के चित्त में जो यह प्रमाद है, उसे कुटिल काल का विकराल दाँत ही समझना चाहिए। यह वही काल-दन्त है जो मनुष्य के असंख्य गुणों को भी क्षणमात्र में; प्रमादवश, घास-भूसे के समान चर जाता है।

८१

प्रमाघ्न इति वक्तव्ये प्रमाद इति जल्पति।
जनस्तस्यैव माहात्म्याद् वैयाकरणराडपि।।

लोक की मूर्खता देखिए कि 'प्रमाघ्न' अर्थात् 'बुद्धि का हनन करने वाले' को 'प्रमाद' अर्थात् 'बुद्धि देने वाला' कह कर पुकारता है। और यह लोक का ही प्रभाव है कि बड़े से बड़ा वैयाकरण भी 'प्रमाघ्न' के लिए 'प्रमाद' ही व्यवहार करता है।

*** इति प्रमादनिन्दा ***

८२

कोपान्धकूपपतिताः खादन्ति स्ववपूंष्यपि।
हन्ताऽतस्तं कथं त्यक्तुं विलम्बः क्रियतां बुधैः।।

क्रोध-रूपी अन्धे कुएँ में गिरा मनुष्य अपने ही शरीर को आप खा बैठता है। हाय रे ऐसे इस पाप से अपना पीछा छुड़ाने को विवेकी मनुष्य देर कैसे कर सकता है भला?

८३

दुर्वासाप्रभृतीनां च ब्रह्मतत्त्वविदामपि।
क्रोधस्यैव प्रसादेन नानाविपदभूत्खलु।।

यह क्रोध का ही माहात्म्य है कि ब्रह्मतत्त्व वेत्ता दुर्वासा आदि महामुनियों को भी नाना प्रकार की विपत्तियों का सामना करना पड़ा।

८४

शरन्मध्याह्नकालेऽपि क्रोधान्धः स्वतनूमपि।
यन्न जानाति तत्रान्यज्ञानवार्तैव का भवेत्।।

क्रोध में अन्धा मनुष्य शरद् ऋतु के मध्याह्न में भी अपने ही अङ्गों को नहीं पहचानता। भला ऐसे अज्ञानी को किसी अन्य उपदेश से क्या लाभ?

८५

किं कुम्भीपाक एवायं कोपरूपेण देहिनाम्।
त्रैलोक्येऽपि विपत्त्यर्थमवतीर्णो भवार्णवे।।

कहीं ऐसा तो नहीं कि मनुष्यों की विपत्ति के लिए कुम्भीपाक नामा नरक ही इस संसार में क्रोध का रूप धर आया हो।

८६

क्रोधमुग्धधियां नैव सुखं कालत्रयेऽपि च।
दृष्टं कदाप्युलूकानां क्रीडनं फुल्लपङ्कजे।।

क्रोध से अन्धे मनुष्य भूत, भविष्य या वर्तमान कभी भी सुख प्राप्त नहीं कर सकते। दिन हो या रात, सुबह हो या शाम कभी उल्लू को खिले कँवलों वाली बावड़ी में विचरते देखा है?

* इति क्रोधनिन्दा *

८७

कलावन्तमपि स्वच्छं सद्वृत्तमपि शीतलम्।
लोभः क्षयं नयत्येव पूर्णचन्द्रं कलङ्कवत्।।

मनुष्य कितनी भी कलाओं से परिपूर्ण, पवित्र, सच्चरित्र और सुशील हो यदि उसमें लोभ है तो उसका नाश उसी प्रकार निश्चित है जैसे कलावान्, स्वच्छ, सद्वृत्त, शीतल और पूर्ण चन्द्रमा को भी अन्धकार नष्ट कर ही डालता है।

८८

तृष्णाभुजङ्गीदंशेन भूरिविभ्रान्तचेतसाम्।
नौषध्यो न च मन्त्राः स्युः शमाय मणयोऽपि न।।

तृष्णा यानी लालच रूपी नागिन के दंश से बेसुध फिरते मनुष्यों को न तो औषधियाँ शान्त कर सकती हैं, न तन्त्र-मन्त्र और न मणि आदि पत्थरों के टोटके।

८९

आशानां पूरणं कर्त्तुं ये यतन्ते मनस्विनः।
आकाशं कवलीकर्तुमुद्युक्तास्ते कुतो न वा।।

अपनी समग्र आशाओं को पूरा करने हेतु जो मनस्वी दिन-रात प्रयत्न किया करते हैं वे क्या समग्र आकाश को ही एक बार में निगलना नहीं चाहते?

९०

चतुर्मुखसमस्यापि यदा पुंसः स्पृहा भवेत्।
तदैव स चतुष्पादो धमतोऽप्यधमायते।।

चार मुखों वाले ब्रह्मा के समान ऐश्वर्यशाली मनुष्य में भी यदि स्पृहा बच रही हो, क्षण मात्र में चार पैरों वाले पशु के समान मात्र श्वास लेता हुआ जीवित रहता है।

९१

तृष्णयैवाखिला दोषास्तच्छित्त्यैवाखिला गुणाः।
मोदाः सर्वे विद्ययैव शोकाः सर्वेऽप्यविद्यया।।

तृष्णा से ही समस्त अवगुण उत्पन्न होते हैं और इसकी समाप्ति से ही समस्त गुण प्रकट हो जाते हैं। संसार के समस्त सुखों का मूल साधन विद्या और समस्त दुःखों का मूल साधन अविद्या है।

* इति तृष्णानिन्दा *

९२

पूर्णेन्दुः कीर्तिकौमुद्याः सुखस्वर्द्रोः सुधाम्बुधिः।
ज्ञानोद्यानस्य सुरभिर्धर्म एव न चेतरः।।

कीर्ति-रूपी कौमुदी का पूर्ण चन्द्र, सुख-रूपी स्वर्ग-नदी का अमृत-रूपी जल, ज्ञान-रूपी उद्यान का सुगन्ध निश्चय ही मनुष्य का धर्म है, कुछ और नहीं।

९३

विधातृत्वादिपदमप्याप्यते निजधर्मतः।
एतं चिन्तामणिं हित्वा धनायाटन्ति तान्नुमः।।

अपने धर्म में निरत रह कर विधाता आदि पदवी को भी प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु ऐसे किसी चिन्तामणि को छोड़ जो मात्र धन के लिए मारे-मारे फिरते हैं, उन महापुरुषों को प्रणाम।

९४

सदाचारवतां पुंसां तपःसिद्धिः पदे पदे।
यथा मानसहंसानां प्रफुल्ला हेमपद्मिनी।।

सदाचार सम्पन्न पुरुषों को उनके परिश्रम, उनकी तपस्या का फल पद-पद पर उसी प्रकार उपलब्ध होता है ज्यों मानसरोवर के हंसों को पद-पद पर प्रफुल्लित पद्मिनियाँ उपलब्ध हुआ करती हैं।

९५

स्वधर्म एव संसेव्यः प्राणान्तेऽपि नरैः सदा।
पुमर्थानर्घ्यरत्नानां स एव यत आकरः।।

मनुष्य को चाहिए कि प्राणों के मूल्य पर भी अपने धर्म का आचरण करता रहे क्योंकि जीवन के प्राप्तव्य चारों ही पुरुषार्थ और अमूल्य सांसारिक रत्नों का उत्पत्ति स्थान धर्म ही तो है।

९६

स्वकर्मनिरतं नित्यं स्तुवन्त्यपि दिवौकसः।
तद्विहायाहितार्थ्यन्यत् को वा नरखरश्चरेत्।।

कर्म में निरत मनुष्यों की स्तुति और उनकी प्रशंसा स्वयं देवता भी किया करते हैं। ऐसे अपने महनीय कर्म को छोड़ अहित अर्थ की कामना करने वाला तो मनुष्य के रूप में कोई गधा ही हो सकता है।

*** इति स्वधर्मप्रशंसा ***

९७

विमुक्तिकान्तादूत्येका भक्तिरेव विराजते।
सैवादौ दृढमाराध्या ततस्तद्रतिलालसैः।।

असार इस संसार में भक्ति, मुक्ति-रूपी कान्ता की दूती ही तो है। इसलिए मुक्ति-कामी मनुष्य को चाहिए कि वह प्रारम्भ में 'सेवा' की जम कर आराधना करे और 'सेवा' के सध जाने के बाद 'भक्ति' का अवलम्ब ले।

९८

भक्तिसौभाग्यभोगेन भगवानपि भृत्यताम्।
प्रयाति का कथान्यार्थस्वार्थानां स्वहितार्थिनः।।

भक्ति रूपी सौभाग्य के प्रसाद से स्वयं भगवान् भी मनुष्यों के दास हो रहते हैं। इसलिए अपना हित चाहने वालों के लिए भक्ति को छोड़ और कौन सा अर्थ शेष रह जाता है।

९९

अहो भक्त्या किरातोऽपि पुरान्तकसरूपताम्।
पुराऽवापेति सा कस्मान्न कार्याऽऽनन्दलिप्सुभिः।।

जब एक सामान्य किरात भी भक्ति के कारण शिव-सायुज्य को प्राप्त हो सकता है तो परमानन्द की आशा रखने वाले भक्ति का आश्रय क्यों न लें?

१००

मूढभक्त्यवभासेन पशवोऽप्यापुरीश्वरम्।
तस्माद्विजायते सैव तरी संसारवारिधेः।।

मूढ भक्ति के अवभास मात्र से ही पशु भी ईश्वर को प्राप्त कर गए। इसलिए संसार रूपी सागर को पार कराने वाली नौका एकमात्र भक्ति ही है।

१०१

रतिं दिशति या पुंसि जीवन्मुक्त्या सह स्फुटम्।
प्रस्वेदप्रमुखैर्लिङ्गैस्तस्यै भक्त्यै नमो नमः।।

सांसारिक रति में हर्ष, रोमाञ्च और पसीना आदि के द्वारा जो परमानन्द का आभास मात्र देती है, उस भक्ति को बारम्बार प्रणाम।

* इति भक्तिप्रशंसा *

१०२

यो नीतिशतपत्रस्येत्यच्युतेन कृतस्य च।
सौरभ्यतः स्यादामोदी राजहंसो भवेदसौ।।

अच्युत के द्वारा विरचित इस नीतिशतपत्र की सुगन्ध से जो आनन्दित हो तो वह निश्चय ही राजहंस (विवेकी) हो उठे।

१०३

श्रीनारायणगुर्वङ्घ्रिशतपत्रे समर्पितम्।
न नीतिशतपत्रं किं भूयात् षट्पदतुष्टये।।

श्रीनारायण नामा आचार्य के पाद-पद्मों समर्पित यह नीतिशतपत्र ज्ञानी-भँवरों के हृदय को तुष्टि प्रदान करने वाला होवे।

१०४

पाण्डुरङ्गाख्यहंसस्य गुरुपादाब्जशायिनः।
सौरभ्यायास्तु सततं तन्नीतिशतपत्रकम्।।

पाण्डुरङ्ग नामा परमहंस आचार्य के चरण-कमलों की सेवा करने वाले इस अच्युत का यह नीतिशतपत्र विद्वानों को सदा आमोदित करता रहे।।

।। इत्यच्युतविरचितं नीतिशतपत्रं समाप्तम् ।।

पाठान्तर

* मूल अंश (पद, पदांश या वर्ण-मात्र) को 'बोल्ड' (गाढ़े) अक्षरों में दर्शाया गया है।
* पाठान्तर के आगे एक खड़ी पाई (।) से आशय सम्बन्धित पाठ प्रथम पंक्ति में है एवं दो खड़ी पाई (।।) से आशय सम्बन्धित पाठ द्वितीय पंक्ति में है।

पद्य सं.	रतिमुकुलः	
	वाराणसी	बड़ौदा
1.	इति भियेव दक्षान्ये।	इति भियपसव्यान्ये।
4.	भान्येव मौक्तिकानि.... ।	भान्येव मौक्तिकानि.... ।
5.	राज्ञस्तुछा... अप्यासन्त्समाहिताः..।।	राज्ञस्तुंछा... अप्यासन्त्समाहिताः...।।
7.		..... जीवाश्रुंबनदानेन तोष्यते।।
10.	तम एव ज्योतिरभूद्दिजेंद्र... ।	तम एव ज्योतिरभूद्दिजेंद्र... ।
15.		वदनैकजनितं... ।
20		... माधवे य उदलं।
21.		... भवंति युवसुं मुद्रदे।
22.	प्रथमर्तमती... ।।	... किमसौ नहि सुखतति:।।
24.	...तरुणि बभूव त्रिवेणीयं।।	...तरुणि बभूव त्रिवेणीयं।।
25.	...सरसां मुन्मीनीमिवात्मरतिः।	...सरसां मुन्ममिवात्मरतिः।
31.		... तुर्यावस्थोव शय्येयं।।
39.		रामानन तानरसं ...।।
42.	प्रियनखदशचंद्रैर्निपीडूते ...।।	प्रियनखदशचंद्रैर्निपीद्धते ...।।
44.	... मदनोधुनेनति दृष्टिः... ।	सद्वत्तं च गुरुत्वं .... ।।
50.		सद्वत्तभूरिभास्वर.... । विरचितसौभाग्यो नासिकावसतियोग्यः।।
51.		श्रुतिशिरस्थितिभाजां ....।
52.		ननारतत्नान्वितं महाललितं।

61.		नहि निर्जरे तरष्वपि ...।।
67.		... करमयो निधायात्र।
73.		गलरंबरातिचपलजपनतट...।
76.		परिपटलेंदुवदना.... संपीकृतकेश... ।
77.		पश्यति हृदक्षतमपि .... ।
89.	विभ्रमता तत्र किं न दृढं।	विभ्रमता तत्र किं न दृढं।
	नीतिमुकुलः	
		बड़ौदा
4.		...दीर्घमूर्ध्वपागतिः।
20.		... खलः शुचीस्ते...।
		... तुषाण्येवास्य तु.... ।।
25.		... न हारसंछनौ।।
26.		... पादतो दोपि।
30.		... परोपि निर्भत्स्य ईषदपि...।
34.		... सरलं निर्भृर्त्सति ...।
35.		... परगृहवसद्विजानां ...।
38		बलिसंस्यद्धर किंचित् ..।
41.		दैवन्निजगृह...।
44.		... स्वप्रेप्यात्महितायैव ...।
52.		...धनुर्भृतो लक्षलाभेपि।।
54.		यावत्राकानपर्णा...।
61.		सा वाग्ययाऽश्रु... नूतरत्न...।
62.		... वह्निवैद्यवगवां।
63.		...एवाहरहरतुल।।
64.		... कवीद्रैर्निगद्यते ...।।

66.		दुर्बुद्धिदीतरः किल ...।
70.		... प्रचुरतनिर्मलः किमुत ...।।
72.		... सद्वत्तः सरंसोपि ...।
74.		... बुद्धयश्यंत्यपि प्रौढाः।।
78.		... युवतिनेत्रयोगन।।
80.		किं भ्रमभिन्नं लते ... तद् वृषवत् द्रौश्च।।
81.		... परभृता द्विजोस्त्यन्यः।।
91.		... लोकानपापि किं ...।
95.		... न्योमजीननं भजते।।
98.		...निपुणोपि त रसलोभेनापि ...।
101.		... किमत्र धूते जनः।
107.		धिस्तं .... मुखरमाप्य....।।

रतिनीतिमुकुलः

	वाराणसी	बड़ौदा
2.		... अपि सुमनसां समागतः।
8.	... शोभनशुभवृत्तत्वेपि वृत्तेपि ...।	... शोभनशुभवृत्तत्वेपि वृत्तेपि ...।
9.		... न जजहाति मधुरिमाणं...।।
15.		... ह्रद इव कमलं ...।
17.		... संख्यं यत्र न तत्र...।
22.	... तदत्र माऽऽयध्वां।	
23.	*पद्य अनुपलब्ध.*	गुणरोधोऽधरसंग पृथ्व्या...।।
27.	तादृगपि प्राप्यते न यत्नेपि/	तादृगपि प्राप्यते न यत्नेपि।/
	तादृङ् न प्राप्यतेति यत्नेपि।	...वदननीतशोभायः।।
28.	...कर्णवदुपयाति किं...।।/	...कर्णवदुयाति किं...।।
	...श्रुतिरिव संयाति किं...।।	
38.		...संचारसंगरहंतोपि।
39.		मृगमदपत्रविचित्रोप्पलायाः...।।

41.	...मण्डलमौक्तिकितः ...।	*पद्य अनुपलब्ध.*
42.	...दृष्टमिदं सुतनु हन्वधरे।।	
48.		...महान्त्र बत लघ्याः।
57.	...दृष्टं कामिनीस्तनकुचयोः।।	...दृष्टं कामिनीस्तनकुचयोः।।
64.	... सुदृशा कुत्रापि नोचितं...।	
65.		...जातु स्तंभात्यसंक्षोभं।
68.	स्यादन्यथां ततो ...।।	स्यादन्यथां ततो ...।।
79.		... यत्र गुणैर्गूहितं ...।।
81.		... कापि विविद्या स्यात्।
83.	... शाटी नहि धीरवधूटीव...।।	
91.		सदलंकारविलोभनवशो ...।
92.		उद्गतपयोधरा चेद्यौत् रिव ...।।
93.		... कुचमण्डलं मण्डनं क्रियते।।

नीतिशतपत्रम्

17.	... क्वाप्यवलोकयते।
25.	विद्या सीस्याद् ...।।
63.	न धनीना न बलीनापि ...।
68.	... विचार्यैव तदातचरेत्।
75.	अमृतात्मकरात्रैव ...।।
80.	शंके वृतांत ...।
89.	... येतंते मनश्विनः।
98.	मुक्तिसौभाग्य... नृत्यतां।

अकारादिक्रमसूचित पद्यानुक्रमणी

रतिमुकुलः

(पद्यों के आगे पहली संख्या मूलशतक में पद्य की और () में पड़ी संख्या पृष्ठ-संख्या है)

नीतिमुकुलः

(पद्यों के आगे पहली संख्या मूलशतक में पद्य की और () में पड़ी संख्या पृष्ठ-संख्या है)

रतिनीतिमुकुलः

(पद्यों के आगे पहली संख्या मूलशतक में पद्य की और () में पड़ी संख्या पृष्ठ-संख्या है)

📖

नीतिशतपत्रम्

(पद्यों के आगे पहली संख्या मूलशतक में पद्य की और () में पड़ी संख्या पृष्ठ-संख्या है)

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

Narahari, H. G., (Author), *The Prarabdhadhvansamhritih of Achyut Sharma Modaka, New Indian Aniquary,* vol.-5, Mumbai, Karnatak Publishing House, 1942-43.

Raghavan, Nambiyar, (Editor), *An Alphabetical List of Manuscripts in the Oriental Institute Vadodara,* Oriental Institute, Vadodara. 1999.

Raghavan, V., (Editor), *New Catalogous Catalogorum, vol-1,* Madras, University of Madras, 1968.

Tagare, G.V., (Author), *Achyutraya Modaka's Avaidik-dhikkriti, Bulletin of the Deccan College Research College Institute,* vol-18, Deccan, Deccan College. Pune. 1957.

काणे, पाण्डुरङ्ग वामन, (लेखक) *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास,

खरे, मोरो हरि (लेखक), *मोडककुलवृत्तान्त*, आदर्श मुद्रणालय, पूना, 1946 ई.

चित्राव, सिद्धेश्वर शास्त्री, (सम्पादक), *मध्युगीन चरित्र कोश*, पूना, 1937 ई.

मिश्र, प्रताप कुमार,

- *अच्युतराय मोदक-कृत नीतिशतकम् की अज्ञात एवं दुर्लभ पाण्डुलिपि*, प्रत्नकीर्ति (On-line research Journal), भाग-1, अंक-2, 2014. www.pratnakirti.com

मिश्र, प्रवीण कुमार,

- *अच्युतराय मोदक (1778-1828 ई.) कृत आर्याशतकम् की अज्ञात एवं दुर्लभ पाण्डुलिपि*, प्रत्नकीर्ति, (On-line research Journal), भाग-1, अंक-1, 2014. www.pratnakirti.com
- *अच्युतराय मोडक और उनकी अज्ञात रचना शृंगारशतकम्*, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, एप्रिल-जून 2007 ई., नागरीप्रचारिणी सभा, काशी.

मोडक, अच्युतराव,

- *अद्वैतामृतमञ्जरी (नीतिमुकुल)*, हस्तलिखित प्रति, Oriental Institute, Vadodara, No.-4269.

- *अद्वैतामृतमञ्जरी (रतिनीतिमुकुल)*, हस्तलिखित प्रति, 1. अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी, संख्या-320, Oriental Institute, Vadodara, No.-4270.

- *अद्वैतामृतमञ्जरी (रतिमुकुल)*, हस्तलिखित प्रति, अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी, संख्या-321, Oriental Institute, Vadodara, No.-4267.

- *कृष्णलीलामृतम्*, (सम्पादक) बाल शास्त्री मोडक, गणपत कृष्णाजी मुद्रणालय, मुम्बई, 1873 ई.

- *जीवन्मुक्तिविवेकः*, (सम्पादक) वासुदेव शास्त्री पणशीकर एवं गणेश शास्त्री गोखले, आनन्दाश्रम, पूना, 1916 ई.

- *नीतिशतपत्रम्*, हस्तलिखित प्रति, अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी, संख्या-328.

- *नीतिशतपत्रम्*, (सम्पादक) बाल शास्त्री मोडक, गणपत कृष्णाजी मुद्रणालय, मुम्बई, 1869 ई.

- *पञ्चदशी*, (सम्पादक) रावजी शर्मा गोंधळेकर, जगद्धितेच्छु प्रेस, पूना, 1895 ई.

- *बोधैक्यसिद्धिः*, (सम्पादक) शंकरशास्त्री मारुलकर, आनन्दाश्रम, पूना, 1951 ई.

- *भागीरथीचम्पूः*, गोपालनारायण कम्पनी, बम्बई,

- *भामिनीविलासः*, (व्याख्याकार) अच्युतराय मोडक, (सम्पादक) काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब एवं मङ्गेशरामकृष्ण तैलङ्ग, निर्णयसागर, मुम्बई, 1894 ई.

- *भालचन्द्रचम्पूः*, (सम्पादक) सत्यप्रकाश शर्मा, त्रयी प्रकाशन, अलीगढ, 1988 ई.

- *वेदान्तामृतचिद्रत्नचषकः*, (सम्पादक) सुप्रिया महाजन, आनन्दाश्रम, पूना, 2015 ई.

- *साहित्यसारम्*, (सम्पादक) वासुदेव पणशीकर, निर्णयसागर, मुंबई, 1906 ई.,

- *साहित्यसारम्*, (सम्पादक) ददन उपाध्याय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2004 ई.,

भूमिका एवं परिशिष्ट में समाहित विशिष्ट नाम एवं स्थानों की

शब्दानुक्रमणी

विमलेन्दु कुमार त्रिपाठी. प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा पण्डित वासुदेव द्विवेदी शास्त्री के संरक्षण में. माध्यमिक, उच्चशिक्षा (सं.वि.ध.वि.संकाय) एवं *'अच्युतराव मोडक-कृत साहित्यसार में ध्वनिविमर्श'* शीर्षक पर शोधोपाधि संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से (2016 ई.). वर्तमान में संस्कृत-प्रवक्ता, +2 राज्य सम्पोषित उच्च विद्यालय, धनवार, गिरीडीह, झारखण्ड. शोधकार्य के क्षेत्र : संस्कृत-साहित्य एवं साहित्यशास्त्र, पाण्डुलिपिविज्ञान. सम्बन्धित विषयों पर दर्जनों शोधपत्र प्रकाशित.

VIMALENDUBHU@GMAIL.COM

राइचरण कामल. प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा-दीक्षा 'कोयाँई उच्चविद्यालय (नेडादेउल), उच्चशिक्षा विद्यासागर विश्वविद्यालय एवं मेदिनीपुर कॉलेज, पं. बंगाल से. वर्तमान में अच्युतराव मोडक-कृत *'भालचन्द्रचम्पू-प्रबन्धस्य समीक्षात्मकम् अध्ययनम्'* शीर्षक पर संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से शोधकार्य. शोध-क्षेत्र : संस्कृत-साहित्य एवं साहित्यशास्त्र, पाण्डुलिपि-विज्ञान. सम्बन्धित विषयों पर शोधपत्र प्रकाशित.

RAICHARANK@GMAIL.COM
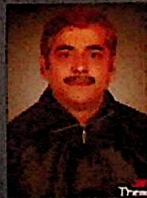
प्रताप कुमार मिश्र. प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा पण्डित वासुदेव द्विवेदी शास्त्री के संरक्षण में. माध्यमिक एवं उच्चशिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से. *'संस्कृत-साहित्य में मानवाधिकार'* शीर्षक पर शोधोपाधि लखनऊ विश्वविद्यालय से (2007 ई.). शोधकार्य के क्षेत्र : प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय इतिहास, संस्कृत-साहित्य एवं इतिहास, संस्कृत-विद्या को मुस्लिमों का योगदान, पाण्डुलिपिविज्ञान, अनुवाद.

PRATAPM1977@GMAIL.COM

संस्थान की मुख्य परियोजनाओं के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकें

संस्कृत साहित्य को मुस्लिमों का योगदान (मुग़ल)

1. खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत
   प्र. सं.- 2007 ई., भूमिका 6+342 पृष्ठ, H.B., मूल्य - 250/-
2. मुग़ल सम्राट अकबर और संस्कृत (तीन भाग में)
   प्र. सं. - 2012 ई., भूमिका 15+1072 पृष्ठ, H.B. मूल्य- 660/- प्रति सेट

अज्ञात एवं दुर्लभ कृति प्रकाशन माला

1. नवाबखानखानाचरितम (हिन्दी-अनुव[illegible])
   प्र. सं.- 2007 ई., भूमिका-98, + 48 पृष्[illegible] [illegible]B., मूल्य [illegible]0/-
2. सर्वदेशवृत्तान्तसंग्रह or अकबरनामः
   प्र. सं. 2012 ई., भूमिका-74,+172 पृष्ठ, H.[illegible]., मूल्य- [illegible]

अनूदित साहित्य श्रृंखला

1. कर्णभारम् (नाटक, मूल संस्कृत से उर्दू अनुवाद)
   प्र. सं.- 2015 ई., भूमिका-10,+38 पृष्ठ, P.B., मूल्य - 60/-
2. उमराव जान अदा (उपन्यास, मूल उर्दू से संस्कृत अनुवाद)
   प्र. सं.- 2016 ई.,भूमिका-64, +218 पृष्ठ, H.B., मूल्य – 500/-

Contact -
Publication Manager :
Ara Ji No. 469, Satyam Nagar Colony, Bhagawanpur,
B.H.U., Lanka, Varanasi, Pin: 221005.
Mobile: 9415697016, 9415697014
Email: praachyapublication@gmail.com

ISBN: 978-81-906145-8-0
9 788190 614580

Cover Photo : Krishna and Radha in a Pavilion (1760 AD)
National Museum, New Delhi